महाकवि भास विरचितम्

प्रतिमा नाटकम्

अनुवादक
डॉ० श्रीकृष्ण ओझा
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक

आदर्श प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर-3

[मूल्य : रु० 8.00

प्रतिमा नाटक की विषय-सूची

प्रिंटिंग सेन्टर, चौड़ा रास्ता, जयपुर—3

भास का जीवनवृत्त

भास ने अपनी कृतियो मे अपने सम्बन्ध मे कुछ भी निर्देश नही किया है। अतः इनके जीवनवृत्त के बारे मे निश्चित जानकारी प्राप्त करना कठिन है। किन्तु इनके विषय मे कई किम्वदन्तिया प्रचलित है तथा उनकी रचनाओ में भी कुछ ऐसे सकेत विद्यमान है, जिनसे उनके जीवन वृत्त पर प्रकाश पडता है।

दन्तकथाये—प्रचलित दन्तकथा के अनुसार भास जाति के धोबी या धावक थे। आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश मे इनका उल्लेख किया है। इसके अनुसार श्री हर्ष की रत्नावली आदि नाटिकाओ के प्रणयन मे धावक कवि सहायक था और उसको धन दिया गया था। कतिपय विद्वान् भास की उपाधि धावक मानते है। किन्तु भास को श्री हर्ष कालीन स्वीकारना (सप्तम शताब्दी ईस्वी) कथमपि युक्तियुक्त नही है।

दूसरी किम्वदन्ती के अनुसार भास जाति के धोबी थे और उन्ही का नाम घटकर्पर था। समीक्षा करने पर यह दन्तकथा भी तथ्यशून्य है, क्योंकि घटकर्पर कालिदास के समकालीन हैं। सम्राट् विक्रम की राजसभा के नवरत्नों में कालिदास और घटकर्पर का नाम आता है। अतः भास और घटकर्पर की अभिन्नता स्वीकार नही की जा सकती है।

तीसरी दन्तकथा मे बताया गया है कि एक बार व्यास और भास मे प्रतिष्ठा के लिए झगड़ा हुआ। व्यास अपने को श्रेष्ठ और प्रतिभाशाली कवि मानते थे और भास अपने को। निर्णय के लिए दोनों के ग्रन्थ अग्नि को अर्पित किये गए। कहा जाता है कि व्यास के ग्रन्थो को अग्नि ने भस्म कर दिया, पर भास के नाटको मे स्वप्नवासवदत्तम् अग्नि मे भस्म न हो सका। राजशेखर ने इसकी पुष्टि की है। इसका आशय यह है कि भास भी व्यास के समान प्राचीन एव यशस्वी कवि है। इन दोनो के कल्पित कलह से यह भी ध्वनित होता है कि नाटककार भास महाकवि व्यास के समान अनेक कृतियो के लेखक हैं।

एक अन्य मत के अनुसार प्राचीन समय मे गोत्र के नाम पर व्यक्ति के नामकरण की प्रथा प्रचलित थी । पतंजलि, यौगन्धरायण, काश्यप आदि नाम गोत्र के आधार पर ही प्रयुक्त है । अगस्त्य गोत्र की हेमोदक शाखा में "भाष" गोत्र है । इसी गोत्र मे नाटककार भास का जन्म हुआ था । क्योकि भाष गोत्र का अपभ्रंश रूप भास है । अतएव भास नाम गोत्र के नाम के आधार पर प्रचलित हुआ है । भास जाति के ब्राह्मण थे और वर्णाश्रम धर्म के पोषक थे । यज्ञ के प्रति इनकी अपूर्व आस्था अभिव्यक्त होती है ।

कृतियों के आधार पर—पुसालकर महोदय का विचार है कि स्वप्न-वासवदत्तम् और अविमारक रूपको के मगलाचरण मे प्रयुक्त "त्वाम्" और "ते" पद से यह ध्वनित होता है कि भास शासक नृपति थे । वे इन रूपको के प्रथम अभिनय में स्वय सम्मिलित रहे होंगे और उन्होने उपस्थित सामाजिको के लिए आशीर्वाद के रूप मे "त्वाम्" और "ते" पदों का उपयोग किया होगा । प्रस्तुत सन्दर्भो मे त्वम् और ते पद का प्रयोग कवि की उपस्थिति के साथ उसके प्रशासक होने का भी सूचक है ।

प्रतिज्ञा, पचरात्र और प्रतिमा रूपको के मंगलाचरण मे कवि राजा की उपस्थिति को निश्चित रूप से प्रतिपादित नही करता । वह सामाजिको के कल्याण का आशीर्वाद "वः पातु" पद द्वारा प्रदान करता है । अतः इन रूपको के मंगल श्लोको से भास किसी राजसभा मे निवास करने वाला राज-कवि सिद्ध होता है ।

भास की वैदिक क्रियाकाण्ड के प्रति अपार आस्था है । वह धर्मभीरू, सकल शास्त्रो का ज्ञाता, विनीत, प्रत्युत्पन्नमति, हास्यप्रिय, शिष्ट, गुरुजनो का आज्ञाकारी एव कुशल भाषणकर्ता सिद्ध होता है । चाटुकारिता से रहित स्पष्टवादी और राष्ट्रकवि के रूप मे भास को माना जा सकता है ।

भास की रचनाओ से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कवि मे देशभक्ति कूट-कूट कर भरी है । इसी कारण विदेशी राजा के विनाश तथा एकच्छत्र राज्य की वह कामना करता है । नाटकों के अन्तरग परीक्षण से भास का राष्ट्रप्रेम भी झलकता है । प्रतिज्ञा यौगन्धरायण नाटक मे कर्मठ तथा सफल मन्त्री का अपने स्वामी के मगल हेतु प्रतिज्ञा करना और उस कठोर व्रत का तत्परता एव बुद्धिमत्ता से पालन करना मन्त्रियो के लिए आदर्श का

वस्तु है। मंत्रित्व के इतने सफल अंकन से भास के किसी राजा के यहाँ मंत्री होने की सूचना मिलती है। ऐसा ज्ञात होता है कि वे परम राजभक्त मंत्री थे और किन्ही कारणो से उनका देश निर्वासन किया गया था अथवा उन्हे स्वयं शत्रु या किसी विदेशी राजा के यहाँ जाकर रहना पडा हो और दक्षिण में उन्होने शरण ली हो। दक्षिण मे इनकी कृतियो की प्राप्ति का भी यही कारण है।

भास मनुष्य स्वभाव और प्रकृति के पारखी है। इनकी रचनाओ से यह सकेतित होता है कि इनका कौटुम्बिक जीवन सुखी था। ये कर्त्तव्यपरायण पुत्र, निष्ठावान् पति एव सन्तानप्रिय पिता थे। अविभक्त परिवार के प्रति इनकी अपार आस्था थी। ये आशावादी व्यक्ति थे। न्याय व स्वतन्त्रता के प्रेमी थे। राजकुलो से सम्बन्ध रहने के कारण राजप्रासाद तथा अन्तःपुरो के सजीव चित्रण में विशेष रुचि प्रदर्शित की गई है। अमात्य, सेना, दूत, युद्ध आदि के चित्रणो से भी यह सिद्ध होता है कि भास का सम्बन्ध किसी राजकुल से अवश्य था।

भास का जन्म स्थान

प्रायः सस्कृत के समस्त मूर्धन्य कवियो एव नाटककारो के जन्मस्थान और जन्मकाल के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है। भास ने अपने जन्म से भारत के किस भूभाग को अलंकृत किया था, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है।

दक्षिणी भारत—भास के रूपको की उपलब्धि केरल मे होने से कुछ इन्हे दक्षिणात्य स्वीकार करते हैं। किन्तु भास ने उत्तर भारत के देश, नगर, नदी, वन, पर्वत आदि का जैसा चित्रण किया है, वैसा दक्षिण का नही। इनका दक्षिण भारत का ज्ञान रामायण और महाभारत के ज्ञान तक ही सीमित है। रामायण की कथावस्तु को ग्रहण करने पर भी इन्होने रामेश्वरम् जैसे प्रसिद्ध तीर्थ का उल्लेख नही किया। अतः भौगोलिक निर्देशो के आधार पर भास को दक्षिण का निवासी नही माना जा सकता। संभव है अपने उत्तरार्द्ध जीवन में ये दक्षिण के प्रवासी रहे हों। सामाजिक दृष्टि से भी भास द्वारा निरूपित रीति-रिवाज एव प्रथाये उत्तर भारत की ही है।

उज्जयिनी—अभिलेखो से ज्ञात होता है कि यह नगरी ई० पू० 400 वर्ष के लगभग प्रसिद्ध हो चुकी थी। उपनिषदो, ब्राह्मण ग्रन्थो व पुराणो में भी उज्जयिनी की प्रसिद्धि मानी गई है। भारतीय साहित्य में जिन सोलह

जनपदो का उल्लेख आया है, उनमे अवन्ती भी एक है। यह अवन्ती जनपद दो भागो मे विभक्त था—उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी भारत की राजधानी उज्जयिनी थी और दक्षिण की माहिष्मती। बुद्ध के समय उज्जयिनी मे महासेन प्रद्योत राज्य करता था। इसकी पुत्री वासवदत्ता व उदयन की कथा प्रतिज्ञा व स्वप्न नाटक मे भास ने अंकित की है। अतः भास का यही जन्मस्थान होना चाहिए, क्योकि उज्जयिनी के प्रति इनकी ममता सर्वाधिक है। भास ने इसके विभिन्न स्थानो का इतना सूक्ष्म तथा सांगोपाग वर्णन किया है, जो आखो से देखे बिना कभी सम्भव नही। अतः इसे भास का जन्मस्थान मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

मगध— भास के रूपको मे मगध के प्रति भी श्रद्धा और आस्था है। कवि ने राजगृह के समीपवर्ती वन प्रदेश और आश्रम का सजीव चित्रण किया है। मगध जनपद के आश्रमों का सूक्ष्म चित्रण रहने से भास का जन्मस्थान राजगृह या उसके आसपास का प्रदेश होना चाहिए, यह सभव है। भास ने अपने नाटको मे नक्षत्र मुहूर्त का उल्लेख किया है। यह परम्परा प्राचीन होने के साथ मगध से सम्बद्ध है। उज्जयिनी मे तिथि मुहूर्त का प्रचार था और मगध मे नक्षत्रमुहूर्त का।

निष्कर्ष—भास के रूपकों के अध्ययन से इतना तो स्पष्ट है कि ये उत्तर भारत के निवासी थे। उज्जयिनी और मगध इन दोनो से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। मगध यदि जन्मभूमि है तो उज्जयिनी प्रवास भूमि और उज्जयिनी जन्मभूमि है तो मगध प्रवास भूमि। राजगृह और उज्जयिनी ये दोनो ही स्थान भास के लिए विशेष सुपरिचित है। अतः इन दोनो मे भौगोलिक महत्व की दृष्टि से उज्जयिनी और सांस्कृतिक वर्णनो की प्रमुखता की दृष्टि से राजगृह भास की जन्मभूमि संभाव्य है। समीचीन यह है कि उज्जयिनी जन्मभूमि है, तो राजगृह कर्मभूमि। भास चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा के अमात्य कवि थे।

भास का काल-निर्णय

भास के काल-निर्धारण मे विद्वानो मे काफी मतभेद है। बाण द्वारा भास के नाटकचक्र का निर्देश किए जाने के कारण भास का समय सातवी सदी ईस्वी के बाद का नही माना जा सकता है। डॉक्टर पुशालकरने भास को रचनाओं के अन्तःपरीक्षण के आधार पर इनका समय ई. पू. चौथी-पाचवी

9-10 शताब्दि राजशेखर द्वारा का उल्लेख है जो 10वी शताब्दि का माना जाता है

शताब्दी माना है। भास के काल-निर्णय के सम्बन्ध मे निम्नांकित बिन्दु अत्यन्त महत्वपूर्ण है—

(1) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक एव स्वप्नवासवदत्त मे जिन प्राचीन राज्यो का उल्लेख किया है, उनका अस्तित्व मौर्य युग के पूर्व महापद्म नन्द के समय अर्थात् ई. पू 384 मे वर्तमान था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में छोटे-छोटे गणतन्त्र विलीन होकर बृहत्तर भारत मे मिल गए थे। फलत: भास द्वारा उल्लिखित राज्यो के आधार पर उनका समय ई. पू. चौथी सदी माना जा सकता है।

(2) भास ने दर्शक के समय मे मगध की राजधानी राजगृह को बताया है। अजातशत्रु के समय मे मगध की राजधानी राजगृह से हटकर पाटलिपुत्र मे स्थापित हो गई थी। अत: भास का काल मौर्यकाल से पूर्व है।

(3) भास की रचनाओ मे भरत के नाट्यशास्त्र के नियमो का विरोध पाया जाता है, जैसे—

(अ) भरत ने प्रस्तावना मे नान्दी पाठ के अनन्तर काव्य के नाम-निर्देश का निरूपण किया है किन्तु भास की रचनाओं मे यह नही मिलता।

(ब) नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रतिज्ञायौगन्धरायण चार अको का होने से तथा दिव्यस्त्री कारणोपगत युद्ध होने से ईहामृग होना चाहिए, पर नाटककार ने स्वयं ही इस नाटक के प्रारम्भ में इसे प्रकरण कहा है।

(स) भरत ने मच पर युद्ध, वध, आक्रमण एव रुदन का निषेध किया है। जबकि बालचरित मे दामोदर द्वारा अरिष्टर्षभ मुष्टिका वध, उरुभंग में दुर्योधन भीम युद्ध तथा अभिषेक मे राम-रावण युद्ध वर्णित है। प्रतिमा में दशरथ की मृत्यु, अभिषेक मे वाली की मृत्यु तथा विभिन्न स्थानो पर शयन आदि का वर्णन आया है। इससे स्पष्ट है कि भास ने नाट्यशास्त्र के नियमों का अनुसरण नही किया है। अतएव भास को भरत से पूर्ववर्ती स्वीकार करना तर्कसंगत है।

(4) भास वात्स्यायन एवं उसके कामसूत्र से अपरिचित है। इसके नाटकों में आए प्रेमसन्दर्भो मे बाभ्रव्य का ही अनुकरण किया गया है। बाभ्रव्य ने मन्दिर गमन, भ्रमण, उद्यान विहार, जलक्रीड़ा, विवाह, उत्सव, पर्व दुर्घटना, अग्निकांड, चोरी, दृश्यदर्शन हेतु गमन आदि द्वारा प्रेमोद्भव का कथन किया

है । ये चारुदत्त, अविमारक, प्रतिज्ञा, स्वप्नवासवदत्त आदि मे मिलते हैं। इधर वात्स्यायन के वर्णन पर अविमारक कथा के अध्ययन की छाया स्पष्ट है। वात्स्यायन का समय चोल चित्रासेना, कुन्तल शातकर्णि, शातवाहन, मलयवती एव नरदेव चित्रलेखा के आख्यानो के प्राप्त होने के कारण ईस्वी सन् 140–200 के लगभग है । भास इनसे पूर्ववर्ती हैं ।

(5) भास की रचनाओ की भाषा मे पाणिनी से यत्र-तत्र भिन्नता उपलब्ध है । यथा सन्धि के नियमो का अतिक्रमण, आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग, अकर्मक धातुओं का सकर्मक के समान प्रयोग, अनियमित समास तथा प्रत्यय आदि । अतएव भास का समय पाणिनि से पूर्व या उनके समकालीन होना चाहिए ।

(6) शूद्रक के मृच्छकटिक पर भास के चारुदत्त का स्पष्ट प्रभाव है, कुछ तो मृच्छकटिक को चारुदत्त का ही विकसित रूप मानते हैं। स्मिथ महोदय ने शूद्रक का शासन काल ई. पू 220–197 माना है । अतः भास का काल इससे पूर्व ही होना चाहिए ।

(7) भास ने नागवन, वेणुवन, राजगृह एव पाटलिपुत्र का उल्लेख किया है । ये सभी स्थान बुद्ध के समय मे प्रसिद्ध हो चुके थे । अतः भास का समय बुद्ध के पश्चात् मानना युक्तिसंगत है।

(8) भास ने मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर, योगशास्त्र, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, प्राचेतस श्रद्धाकल्प, मेधातिथि न्यायशास्त्र आदि का उल्लेख किया है । इनमें से कोई भी ई. पू. चतुर्थ पंचम शताब्दी के बाद का नही है ।

(9) डॉ० पुशालकर ने भास का समय महापद्म नन्द का राज्यकाल बतलाया है । यह पहला शासक है, जिसने समस्त उत्तर भारत को अपने अधीन किया था । भास के भरत वाक्य मे जिस राज्य सीमा का निर्देश आया है, वह राज्यसीमा महापद्म नन्द की है ।

(10) अय्यर महोदय का अनुमान है कि भास कौटिल्य के समकालीन है । कौटिल्य ने नन्दो के विनाश मे योगदान दिया था और चन्द्रगुप्त मौर्य को भारत के चक्रवर्ती पद पर प्रतिष्ठित किया था । चाणक्य या कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे प्रतिज्ञा यौगन्धरायण का "नवं शरावं" (4·2) वाला पद्य उद्धृत

किया है। इससे स्पष्ट है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समय तक भास की रचनाएं विख्यात हो चुकी थी।

(11) भास के कई नाटकों के भरत वाक्य में "राजसिंह" शब्द आया है। मौर्य राजा स्वयं राजसिंह कहलाते थे। अय्यर महोदय का अनुमान है कि चन्द्रगुप्त को ही राजसिंह कहा गया है। वही हिमालय से लेकर विंध्यपर्वत-पर्यन्त समुद्र पृथ्वी का एकच्छत्र भोग करने वाला चन्द्रगुप्त मौर्य ही था। यही प्रथम सम्राट् माना जाता है, जिसने प्रथम बार समस्त उत्तर भारत को संगठित कर अपने शासन के अधीन किया था।

(12) भास के रूपकों मे जैन और बौद्ध धर्म के प्रति किसी भी प्रकार की सद्भावना नही दिखलाई पड़ती। अपितु जो भी धार्मिक आदर्श प्रस्तुत किए गए है, वे वैदिक धर्म के है। भास ने अपनी कृतियो मे सर्वत्र प्राचीन वैदिक आदर्शो का ही चित्रण किया है। यह यथार्थ है कि क्रान्तिकारी जैन और बौद्ध धर्म से भास परिचित थे तथा उन्होंने जैन और बौद्ध श्रमणों का उपहास भी किया है। अतएव इनका समय ई. पू. चतुर्थ शती होना चाहिए।

(13) कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक की प्रस्तावना मे भास को याद किया है। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं। जो विद्वान् कालिदास का समय ई. पू. प्रथम सदी मानते है, उनके मत से भास का समय ई. पू. चौथी शती मानने में कोई विरोध नही है।

अतः भास का समय ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी मानना अधिक उचित है।

भास की रचनाएं

बहुत समय तक भास की रचनाएं अज्ञात रही और कालिदास, बाण, राजशेखर आदि कवियों द्वारा की गई भास की प्रशंसा ही उपलब्ध थी। सन् 1912 ई. मे गणपति ने त्रिवेन्द्रम से भास के 13 नाटको का एक संग्रह प्रकाशित किया। इनके नाम इस प्रकार है--

(1) प्रतिमा नाटक
(2) अभिषेक
(3) पंचरात्र
(4) मध्यम व्यायोग

(5) कर्णभार
(6) दूतवाक्य
(7) दूतघटोत्कच
(8) उरुभंग
(9) बालचरित
(10) प्रतिज्ञायौगन्धरायण
(11) स्वप्नवासवदत्त
(12) चारुदत्त
(13) अविमारक

कथावस्तु की दृष्टि से इन नाटकों के 5 वर्ग बनाए गए है—

(1) रामकथा वाले (प्रथम दो नाटक)
(2) महाभारत की कथा वाले (तीसरे से आठवें तक)
(3) कृष्ण कथा वाला (नवी संख्या का नाटक)
(4) उदयन कथा के (दसवा व ग्यारहवा नाटक)
(5) लोककथा वाले (अन्तिम दो नाटक) ।

भास की कृतियों की प्रामाणिकता

इस संबध मे तीन मत हैं—

प्रथम मत—कतिपय आलोचकों ने नाटकचक्र के रूपकों को केरलीय रंगमंच के अभिनेता चाक्यारों की रचना माना है। उनका मत है कि यदि यह नाटकचक्र भास द्वारा प्रणीत होता तो प्रस्तावना या स्थापना में भास का नाम अवश्य आता। इनकी पाण्डुलिपिया केरल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों मे भी अवश्य प्राप्त होती। रीति ग्रन्थों मे जो स्वप्नवासवदत्तम् के उदाहरण आये हैं, उनका भी वर्तमान नाटक मे अभाव है। प्रतिज्ञा व स्वप्न नाटकों मे विवाह के लिए "सम्बन्ध" शब्द का प्रयोग हुआ है, जो आज भी चाक्यारों मे इसी अर्थ मे प्रयुक्त है।

द्वितीय मत—कुछ विद्वानों ने इन तेरह नाटकों को दो भागों में विभक्त किया है और विभिन्न कार की रचनाएं स्वीकार किया है। ये स्वप्न और प्रतिज्ञा आदि नाटकों को तो भास की कृति मानते हैं तथा अन्य रूपकों को नहीं। इनके अनुसार भास के नाटकों मे परिवर्द्धन तथा संशोधन कर किसी केरल कवि ने इन्हें रंगमंच के योग्य बनाया है। नाटकचक्र पर हुए समीक्षण

और परीक्षणों से यह स्पष्ट है कि इन नाटकों का समस्त अंश भास की रचना नही है।

तृतीय मत—इस वर्ग के विचारक इन तेरह रूपको को भास कृत मानते है, क्योकि—

(1) इन सभी रूपको मे आकृति की समता पाई जाती है। अतः इनका रचयिता एक ही व्यक्ति है।

(2) प्राचीन उदाहरणो मे स्वप्नवासवदत्तम् भास की कृति सिद्ध है तथा ये सभी रूपक उसके ही समान है।

(3) सस्कृत रूपकों की परम्परा के अनुसार नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार रगमच पर प्रवेश करता है, किन्तु इन 13 रूपकों मे नान्दी पाठ की योजना प्रस्तावना मे सम्मिलित नही है।

(4) लगभग सभी रूपको के अन्त में भरत वाक्य का अन्तिम चरण "राजसिहः प्रशास्तु न." लिखा है।

(5) इनमे प्ररोचना का अभाव है तथा अनेक रूपको मे पताका स्थान एव गण्ड का प्रयोग है।

(6) इन सभी नाटकों मे अपाणिनीय प्रयोग भी समान रूप से मिलते है।

(7) भरत नाट्यशास्त्र के नियमो का उल्लघन समान रूप से ही इन नाटको मे पाया जाता है।

(8) युद्ध की सूचना और युद्ध का वर्णन भटो द्वारा किया गया है।

(9) मुद्रा अलकार का प्रयोग चारुदत्त और अविमारक को छोड़ कर शेष सभी नाटको में पाया जाता है। इसमे नाटक के प्रमुख पात्रो के नाम तथा अभीष्ट देवता की स्तुति की गई है।

(10) कंचुकी और प्रतिहारी के नामों की कई नाटको में पुनरावृत्ति हुई है। ये नाम क्रमशः बादरायण और विजया है।

(11) प्रायः सभी नाटको में प्रस्तावना के स्थान पर "स्थापना" का प्रयोग हुआ है। इन रूपको में अन्य किसी भी ग्रन्थकार का नाम नही मिलता। छन्दो के प्रयोग भी प्रायः समान है।

(12) इन सभी नाटको मे साम्य भी उपलब्ध है, जैसे—

(अ) बलशाली की उपमा सिंह से तथा दुर्बल की मृग से दी है।

(ब) वीर व्यक्ति का सबसे अच्छा अस्त्र उसका हाथ बताया गया है।

(स) नारद को "कलह प्रिय" कहा है।

(द) शाप तथा शपथ का वर्णन इन सभी नाटको मे समान रूप से पाया जाता है।

(क) भास ने अपने रूपको मे जीवन की विविधता और वैषम्य का चित्रण किया है, जिससे अश्रु सिक्त अवस्था का वर्णन भी अनेक स्थलो पर आया है।

(ख) **समान भावों का प्रयोग**—जैसे दयनीय दृश्यो का वर्णन समान रूप से उपलब्ध है। ब्रह्मचारी पात्र के प्रवेश से नाटकीय कौतूहल को सजग बनाने का प्रयास प्रायः कई नाटको में पाया जाता है। परिव्राजक या तापस इसी का परिवर्तित रूप है।

(ग) पिता को कन्या के विवाह की चिन्ता, अमात्य का दायित्व, अपराध निरीक्षण एव कला संबधी प्रेम ऐसे भाव है, जिनकी आवृत्ति विभिन्न प्रसंगों मे प्रायः कई नाटकों मे पाई जाती है।

(घ) **सम्पूर्ण पद्य, पद्यांश एवं शब्दों की समता**—भास के 13 रूपको में से कई रूपको मे समान पद्य प्रयुक्त मिलते है। तीन नाटको मे भरत वाक्य एक सा है। कई गद्यखण्ड भी एक जैसे हैं। अब तक के किए गए शोधकार्यों के प्रकाश मे इतना ही कहा जा सकता है कि नाटकचक्र के सभी नाटक एक ही व्यक्ति द्वारा निबद्ध किए गए हैं। अतः यदि स्वप्नवासवदत्तम् का रचयिता भास है, तो नाटकचक्र के सभी रूपको का निर्माता भास कवि ही है, अन्य कोई नही।

भास की नाट्यकला का संस्कृत नाटकों पर प्रभाव

नाटककार भास ने संस्कृत दृश्यकाव्य के पथ को आलोकित किया है। कालिदास आदि के नाटक रामायण, महाभारत के समान भास की नाट्यकला से भी प्रभावित हैं। भास के नाटको के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भास के समय में नाट्यकला का पूर्ण विकास हो चुका था। रंगमंचीय उपयुक्तता तथा अभिनेयता भी परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। महाकवि कालिदास ने तो इनका स्मरण "प्रथितयश" कह कर किया है। यद्यपि कालिदास ने भरत नाट्यशास्त्र के सविधान को अपनाया है, तथापि काव्य के क्षेत्र में वे

भास की उपमाओं, भावों व शब्दो आदि से प्रभावित हैं। वल्कल धारण से सौन्दर्य की वृद्धि, तपोवन का वर्णन, शाप की कल्पना, वृक्ष व लताओं के प्रति स्नेह, भाग्यदशा का चित्रण आदि के भाव कालिदास ने भास से ग्रहण किए है।

भास के चारुदत्त का परिबृंहण कर शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना की है। इन दोनो रूपको की कथावस्तु समान है तथा भावों का अंकन भी उसी प्रकार पाया जाता है। इसे हम भास का प्रभाव ही नहीं कह सकते, अपितु पूर्णतया अनुकरण मान सकते है। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में भी भास के भावों, विचारों और शब्दो के प्रयोग में पर्याप्त समता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा परिस्थिति विशेष में विभिन्न मानसिक स्थितियों का चित्रण विशाखदत्त मे भास के समान पाया जाता है। नाटककार हर्ष भी भास से पर्याप्त प्रभावित है। रत्नावली नाटिका की कथावस्तु का आधार बृहत्कथा चाहे न भी हो पर स्वप्नवासदत्तम् अवश्य है। स्वप्न नाटक में वर्णित उदयन और वासवदत्ता की कथा रत्नावली में यत्किंचित् परिवर्तन के साथ ग्रहीत है। भवभूति की तीनों रचनाओ पर भास का पर्याप्त प्रभाव है। इनके उत्तर रामचरित की चित्रवीथि कल्पना पर भास का प्रभाव पाया जाता है तथा और भी कई भाव साम्य हैं।

भट्टनारायण ने वीर रस प्रधान वेणीसंहार नामक नाटक की रचना की है, जो महाभारत के आख्यान पर आधृत है। इस नाटक की कथावस्तु के गठन मे भट्टनारायण ने वीर रस प्रधान एकाकी उरुभग तथा दूतवाक्य का अध्ययन अवश्य किया है। मुरारि कवि ने अपने अनर्घराघव नाटक में भास अभिषेक और प्रतिमा नाटक से उपमाएँ एव कल्पनाएँ ग्रहण की हैं। राजशेखर के नाटकों पर भी भास की कृतियों का ऋण है। जयदेव कवि के प्रसन्नराघव पर भी भास का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार सस्कृत के सभी नाटककारो ने भास से कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ग्रहण किया है।

भास की भाषा शैली

भास के नाटको मे कल्पना, भावना और कवित्व का प्राचुर्य है, जिसके कारण उनकी भाषा में काव्यात्मकता की प्रधानता है। इनकी भाषा शैली पात्रो के भावो और विचारों के अनुरूप है। शैली की विशेषता के

इनके संवादों में प्रभावात्मकता आ गई है। सूक्ति वाक्यों के प्रयोगों ने इनकी भाषा शैली को सशक्त बनाया है।

प्रभावपूर्ण भाषा—भास की भाषा प्रभावोत्पादक तथा मुहावरेदार है। इसमें सर्वत्र स्वभावोक्ति का पुट मिलता है। लम्बे-लम्बे समासान्त पदों का प्रयोग भास को पसन्द नहीं है। नाट्यकला के लिए भाषा की सरलता, सरसता, स्फुटता, प्रसन्नता, गम्भीरता, मधुरता, मनोरंजकता अपेक्षित है। कथोपकथन एवं कवित्व की दृष्टि से भी इनके रूपक संस्कृत साहित्य के किसी भी सम्मानित कवि या नाटककार से कम नहीं है। निःसन्देह भास की कृतियों में ओज, प्रसाद और माधुर्य इन तीनों गुणों का यथोचित रूप में समावेश हुआ है।

सरल भाषा—अपनी कृतियों में भास ने अलंकार विहीन सरल भाषा का प्रयोग किया है। इनकी प्रवाहयुक्त सरल भाषा भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है। इनके संवादों में शैली की स्वच्छता स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। पात्र कथोपकथनों में अत्यन्त विदग्ध हैं। उक्ति प्रत्युक्ति की मनोरमता अवगत करने के लिए प्रतिज्ञा नाटक में यौगन्धरायण तथा भरत रोहक के संवादों का अवलोकन किया जा सकता है। उदयन पर भरत रोहक द्वारा लगाए गए आक्षेपों का उत्तर यौगन्धरायण जिस चतुराई से देता है, उसमें भास की नाट्यशैली की विशेषता झलकती है। नाटक में तर्क-वितर्क का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि इन्हीं के द्वारा घटना चक्र और कथानक आगे बढ़ता है। भास के नाटकों में उक्ति प्रत्युक्तियों का सतुलित प्रयोग आया है। ये सीधी, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक है।

छन्दों का सफल प्रयोग—नाटककार भास की उक्ति-प्रत्युक्तियों में छन्दों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक हुआ है। यही कारण है कि कई स्थानों पर एक ही छन्द दो भागों में विभक्त हो गया है। पूर्वार्द्ध का प्रयोग एक पात्र करता है तथा उत्तरार्द्ध का अन्य पात्र। इस प्रक्रिया द्वारा पात्रों में प्रत्युत्पन्न-मतित्व समाविष्ट हो गया है।

पात्रों के अनुकूल भाषा—भास के रूपकों की सफलता का श्रेय जहाँ एक ओर इनके चरित्र चित्रणों में निपुण होने को है, वहीं उन पात्रों के नुकूल भाषा का प्रयोग भी हैं। पात्रों और दर्शकों को एक सूत्र में बाँधने

वाला उनका प्रसाद गुण अत्यधिक सहायक हुआ है। रूपकों का प्राण प्रसाद-गुण है, यह स्वीकार करने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है, क्योंकि रूपक गतिशील होता है। जिस गति से वह चलता है, उसी गति से यदि भाषा सामाजिकों की समझ में नहीं आती तो रूपक का समस्त आनन्द ही समाप्त हो जाता है। अतः रूपक को गतिशील बनाए रखने के लिए उसमें प्रसाद गुण की सर्वाधिक आवश्यकता है।

बोलचाल की भाषा—भास ने बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। यही कारण है कि इनकी भाषा में अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी सम्मिलित है। ये आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का अथवा इसका विपरीत प्रयोग करते है। इसी प्रकार इन्होंने अकर्मक क्रियाओं का सकर्मक प्रयोग भी किया है। यही नहीं, भास ने समास की प्रक्रिया में भी कुछ नवीन प्रयोग किए हैं, जो पाणिनि से मेल नहीं खाते। इन्होंने कई नए तथा क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग भी किया है।

शैली में तीनों गुणों का समावेश—शास्त्रीय दृष्टि से भासकी शैली में ओज, प्रसाद व माधुर्य इन तीनों गुणों का समावेश पाया जाता है। ये मधुर तथा मनोरम शैली का प्रयोग वहीं करते है, जहां किसी व्यक्ति की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति करनी होती है अथवा रम्य प्रकृति का वर्णन करना अभीष्ट होता है। यह सत्य है कि जब कल्पना की दुरुहता और अलंकारों के बोझ से भाषा की सहज माधुरी दब जाती है, तब रसोद्रेक में क्षीणता उत्पन्न होती है। भास ने बलपूर्वक अलंकारों का उपयोग नहीं किया है।

सशक्त शैली का प्रयोग—भास की वर्णन कला प्रौढ एवं अपने ढंग की अनोखी है। शैली को सशक्त बनाने के लिए इन्होंने आम, बाढम् यदि, चेत् तथा कुशल प्रश्न के लिए 'सुखमार्यस्य" का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि नाटककार दृश्यों के चित्रण में अत्यन्त पटु है। इस प्रकार के वर्णनों के आधार पर चित्रांकन किया जा सकता है। शैली की संक्षिप्तता के कारण छोटे-छोटे वाक्यों में गंभीर तथा रसपेशल भावों की व्यंजना प्रस्तुत की गई है।

वाग्विस्तार का परिहार—भास के पात्रों ने शैली की विशेषता के कारण कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों की अभिव्यंजना की है।

इनमें व्यर्थ का विसंवाद कही भी प्राप्त नहीं होता है। संक्षिप्त शब्दों मे मनोगत भावों को प्रकट करना भास की विशेषता है। कौन पात्र किस परिस्थिति में किस प्रकार की भावदशा के अधीन रहेगा, इसका चित्रण भास ने कुशलतापूर्वक किया है। वाग्विस्तार का परिहार इनकी प्रमुख विशेषता है। वार्तालापो के आश्रय से ही सारे दृश्य उपस्थित हो गए है। पृथक्-पृथक् अवस्था में विभिन्न भावो और विषयो के सूक्ष्म वर्णन में भास सिद्धहस्त हैं।

वर्णन का सूक्ष्म व स्पष्ट होना—वर्णन की सूक्ष्मता भी भास का शैलीगत वैशिष्ट्य है। विषय या दृश्य का वर्णन करते समय उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश को भी वे उपस्थित कर देते हैं। दरिद्र चारुदत्त मे दरिद्रता का वर्णन स्वाभाविक होने के साथ सूक्ष्म भी है। भास की शैली में संक्षिप्तता के साथ स्पष्टता गुण भी निहित है। वे दृश्य वर्णन प्रसंग मे इतने स्पष्ट रहते हैं, जिससे पाठक या दर्शक बिम्ब ग्रहण करने मे समर्थ होता है। यही कारण है कि भास को संध्यावर्णन, मध्यरात्रि वर्णन, वनवर्णन, मध्याह्न वर्णन, तारुण्य वर्णन आदि मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

अद्वितीय शैली—वस्तुतः भास सरल शैली के जनक हैं। प्रसाद गुण के साथ रसपेशलता, भावो की सम्यक् अभिव्यक्ति, मनोरंजकता, गंभीरता, औचित्य, ओजस्विता और माधुर्य आदि गुण भी इनकी शैली मे समाहित हैं। शैली में प्रवहणशीलता पूर्ण रूप से पाई जाती है। उद्दाम भावनाओं का बड़ा ही सशक्त वर्णन किया है। विपत्तियों के चित्रण मे भास सिद्धहस्त है। बलदेव उपाध्याय के अनुसार "भास की शैली का गुण मौनभाषण भी है। अल्प शब्दो के द्वारा अधिकाधिक भावों की व्यंजना के अतिरिक्त मौन से भी अर्थबोध कराया गया है। ये मौन शब्दों से कहीं अधिक प्रभावशाली हुए हैं एवं रस तथा भाव की प्रतीति मे सहायक हुए हैं। इसी कारण समीक्षकों ने उन्हे 'मौन के आचार्य' विशेषण से विभूषित किया है।"

नाटकत्व व काव्यत्व का सन्तुलन—भास की शैली मे सरल शब्द स्वाभाविक पदविन्यास और भाव सौष्ठव पाया जाता है। रूपक, उपमा, और उत्प्रेक्षा जैसे सरल तथा स्वाभाविक अलंकारो का इन्होने प्रयोग किया है। ये प्रकृति के अनुपम चितेरे हैं। अतः इन्होने सर्वत्र प्रकृति के नैसर्गिक रूप सौन्दर्य का चित्रण किया है। भास की शैली में कृत्रिमता का अभाव होने से

शब्द और अर्थ का सामंजस्य सुन्दर रूप मे घटित हुआ है। नाटकीयता का सन्निवेश सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है। भास का काव्यत्व नाटकत्व का पूरक है। इनके पात्रो के सवाद संक्षिप्त, उचित, अवसरानुकूल तथा कथावस्तु के परिवृहण में सहायक है। नाटकीय कुतूहल सर्वत्र पाया जाता है। भाषा मे अपूर्व प्रवाह और सरलता विद्यमान है। गागर मे सागर भरने वाली उक्ति इनकी रचनाओ मे चरितार्थ है। इनका कथन क्षण भर में गुह्यतम गुत्थियों का समाधान, मानसिक भावनाओ की सुख मे परिणति तथा विचारो को सक्षिप्त रूप मे रखते हुए भाव की स्पष्टता को करने वाला है।

अनुकरणीय शैली—भास की शैली मे भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। अत आद्य नाटककार होने पर भी भास की शैली पूर्ण गंभीर और प्रौढ़ है। इसका अनुकरण कालिदास, हर्ष, भवभूति आदि नाटककारो ने भी किया है।

निष्कर्ष—हम सक्षेप मे भास की शैली की विशेषताओ को इस प्रकार बद्ध कर सकते है—

(1) स्वच्छता और सक्षिप्तता
(2) प्रभावोत्पादकता व व्यजकता का मणिकांचन योग
(3) अल्पसमास या समासहीन वाक्य संघटना
(4) सरलता और सहज बोधगम्यता
(5) औचित्य एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग
(6) लोकोक्तियो एवं सूक्तियो का प्रचुर प्रयोग
(7) घटनाओं का आकस्मिक वितरण
(8) स्वल्प शब्दो द्वारा अधिक भाव व्यजना
(9) अकृत्रिमता और स्वाभाविकता का समावेश

प्रतिमा–नाटकम्

नाटक का नामकरण

प्रतिमा नाटक भास का एक महत्वपूर्ण नाटक है । रामायण की कथावस्तु वाले इस रूपक मे प्रतिमा गृह अथवा मूर्ति गृह की घटना का महत्व ही इस नाटक की इतिवृत्त रचना की प्रमुख विशेषता है । इस प्रकार इसका नाम तीसरे अंक के 'प्रतिमा गृह' की घटना के आधार पर रखा गया है । प्राचीन काल मे राजाओ के देवकुल होते थे, जिनमे मृत्यु के बाद राजाओ की पत्थर की मूर्तिया स्थापित की जाती थी । इक्ष्वाकु वंश का भी ऐसा ही देवकुल था, जिसमे मृत नरेशो की मूर्तिया स्थापित की गई थी। ननिहाल से लौटने समय देवकुल मे स्थापित दशरथ की प्रतिमा को देख कर ही भरत ने उनकी मृत्यु का अनुमान अपने आप कर लिया था । इसी कारण से इसका नाम "प्रतिमा नाटक" पडा । प्रो० ध्रुव के अनुसार इस नाटक का पूरा नाम 'प्रतिमा दशरथ' रहा होगा, जिसे सक्षिप्त रूप मे 'प्रतिमा' कर दिया गया । भास के एक अन्य नाटक 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' को सक्षेप मे 'प्रतिज्ञा नाटक' तथा 'स्वप्नवासवदत्तम्' को 'स्वप्न नाटक' भी कहा जाता है ।

समालोचन

नाटककार भास के प्रतिमा नाटक का मूल वृत्त वाल्मीकि रामायण पर आश्रित है । इसका प्रमुख कथानक अयोध्या काण्ड तथा अरण्य काण्ड के इतिवृत्त पर आधारित है । सात अंको का यह नाटक सुन्दर तथा सुव्यवस्थित है । इस नाटक की कथावस्तु का मुख्य गुण इसकी एकान्विति है । इसमे प्रमुख घटना सीता और लक्ष्मण के साथ राम का वनगमन है, जिसका अवबोध प्रतिमा गृह से सम्बन्धित है । यह घटना नाटकीय चक्र मे इस तरह गुथी है, कि राम का वनगमन स्वतः सम्पूर्ण कार्य व्यापार को अपने साथ लेकर कथानक धुरी बन गया है । प्रतिमा नाटक का एक गुण इसकी पूर्णता है । इसमे

नाओं को इस तरह सजाया गया है कि नाटक के अन्त तक पहुंचते-पहुंचते क्षकों की प्रायः सम्पूर्ण जिज्ञासा पूर्ण हो जाती है। नाटक के कथानक के भिन्न अंगो का विकास सहज रूप मे हुआ है। इसकी सारी घटनाए एक-सरे का सहज विकास है। इसके कथानक मे श्रोता या दर्शक के मन में तूहल उत्पन्न करने की पूर्ण क्षमता है। इसकी घटनाएं अचानक मोड़ लेकर लोगों को सहसा चौंका देती हैं। इसमें कार्य-कारण की पूर्वापरता इस तरह व्यवस्थित की गई है कि स्थान-स्थान पर दर्शक विमुग्ध होता जाता है।

कथावस्तु

प्रतिमा नाटक में कुल सात अंक हैं।

पहला अंक—अयोध्या मे राम के अभिषेक की तैयारिया हो रही हैं। राजा दशरथ के आदेश से सब कुछ व्यवस्थित होता है। अचानक मगल वाद्य बजते हुए रुक जाते हैं। इधर सीता भी परिहास में एक वल्कल वस्त्र पहनती हैं। राम उसके पास आते है और कहते है कि अचानक मेरा राजा बनना रुक गया। वही लक्ष्मण का भी आगमन होता है, जो आवेश मे कहते हैं कि मैं ससार से सभी युवतियो को समाप्त कर दूंगा, क्योकि एक युवती कैकेयी के ही कारण यह सब हुआ है। यही ये बताते है कि राम को 14 वर्ष के लिए वन मे भी रहना पड़ेगा। सीता तथा लक्ष्मण दोनो भी राम से वन चलने की अनुमति प्राप्त कर लेते है।

दूसरा अंक—राम के वन चले जाने के कारण राजा दशरथ अत्यन्त विकल हो जाते है। सभी प्राणियो को लगता है कि उनके बिना अयोध्या सूनी हो गई। कौसल्या और सुमित्रा महाराज को धैर्य बंधाती हैं। सुमन्त्र इन तीनो को रथ में बैठा कर वन में छोड़ने जाते है। अब भी राजा दशरथ को आशा है कि राम वापस अयोध्या लौट आयेंगे। किन्तु जब सुमन्त्र खाली रथ को लेकर आते है, तो दशरथ का हृदय टूट जाता है। उनके और सुमन्त्र के मध्य होने वाले वार्तालाप से अत्यन्त करुणा झलकती है। वे राम, लक्ष्मण और सीता के समाचार पूछते हुए बार-बार सज्ञाहीन हो जाते हे। अन्त में उन्हें लगता है, मानो उन्हें ले जाने हेतु उनके पितर आ गए हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है।

तीसरा अंक—भरत ननिहाल से लौटते है। अयोध्या के बाहर प्रतिमा गृह मे मृत महाराज दशरथ की प्रतिमा स्थापित की जाती है। यहाँ इक्ष्वाकु वंश के अन्य राजाओ की मूर्तियां भी हैं। भरत जब यहां आते हैं, तो उन्हें अयोध्या के बाहर कुछ समय रुक कर ही शुभ मुहुर्त मे अन्दर आने को कहा जाता है। वे इस प्रतिमा गृह को कोई मन्दिर समझ कर देव दर्शनार्थ अन्दर जाते है और पुजारी से उन मूर्तियों के बारे में पूछते हैं। उनको दिलीप, रघु और अज की मूर्तियो का परिचय दिया जाता है। इनसे यह भी कहा जाता है कि यह इक्ष्वाकु वंश के राजाओ का स्मारक गृह है। दशरथ की प्रतिमा को देख कर वे बेहोश हो जाते हैं। स्वस्थ होने पर देवकुलिक (उन्हे) पूरी बात बताता है। इसी बीच रानियां भी वहां आती हैं। भरत कैकेयी को बुरा-भला कहते है एवं सुमन्त्र को साथ लेकर राम को वन से लौटाने हेतु प्रस्थान करते हैं।

चौथा अंक दण्डकारण्य मे भरत पहुंचते हं और राम, लक्ष्मण व सीता—तीनों का अभिवादन करते हैं। भरत कैकेयी की निन्दा करते हुए राम से आग्रह करते हैं कि वे आयोध्या चलें और राज्य ग्रहण करें। राम कहते हैं कि मै पिताजी के कहे हुए वचनो को पूरा करके उन्हे 'सत्य प्रतिज्ञ' बनाऊगा। जब भरत भी वन मे राम के ही साथ रहने का निश्चय प्रकट करते है, तो राम उनको शपथ देकर अयोध्या लौटाते हैं। भरत दो शर्तों के साथ वापस लौटते है—(1) 14 वर्ष की अवधि के समाप्त होने के बाद राम अयोध्या के राज्य को पुनः ग्रहण करेंगे, तथा (2) तब तक के लिए वे राम की चरण पादुकाएं लेकर अयोध्या जायेंगे व उन्हे सिंहासन पर रख कर प्रजा पालन करेंगे।

पांचवां अंक—राम अपने पिता दशरथ का वार्षिक श्राद्ध करने को चिन्तातुर हैं। इसी बीच बाहर से किसी अतिथि का ध्वनि आती है। वहा सन्यासी के कपट वेश मे रावण उपस्थित था, जो अपने भाई खर और दूषण की मृत्यु का बदला लेने राम के पास आया है। राम इस परिव्राजक (सन्यासी) का सम्मान करते है। बातो ही बातों मे रावण बताता है कि राम को सुवर्ण मृग से पिण्डदान करना चाहिए। अचानक वहीं एक ऐसा हिरण दीखता है, जिसे लाने राम चले जाते हैं। लक्ष्मण उस समय अनुप-

स्थित थे। रावण अकेली सीता का अपहरण कर लेता है। सीता की करुण पुकार सुन कर गिद्धराज जटायु वहां उपस्थित होता है।

छठा अंक—रावण और जटायु के मध्य भयंकर युद्ध होता है। अन्त मे जटायु को समाप्त कर रावण सीता को लंका ले जाने मे सफल होता है। जनस्थान के दो तपस्वी इसकी सूचना राम को देते हैं। राम से मिलने सुमन्त्र वहा आते है, किन्तु उन्हे वहा न पाकर भरत को सीताहरण के विषय मे बताते है और कहते है कि वे आजकल किष्किधा में सुग्रीव के समीप है। भरत जब कैकेयी को क्रुद्ध होकर यह समाचार देता है, तो कैकेयी राजा दशरथ को अन्ध मुनि पुत्र को मारने से दिए गए शाप के बारे मे परिचित कराती है। इसे सुनकर भरत अपनी जननी कैकेयी को निर्दोष मानता है और अपनी सेना लेकर लंका के राजा रावण के विरुद्ध अभियान की घोषणा करता है।

सातवां अंक--रावण को मार कर राम आदि जनस्थान पहुचते है। यहा राम और सीता इस स्थान की अपनी पूर्व की अनुभूतियों को कहते है। इसी बीच वहा भरत अपने समुदाय के साथ आ जाते हैं और राम को अयोध्या का राज्य सभला दिया जाता है। कैकेयी भी इस अवसर पर अत्यन्त प्रसन्न है, जो यह कामना करती है कि ऐसा ही अभिषेक अयोध्या मे भी सम्पन्न होना चाहिए। राम इसकी अनुमति प्रदान करते है। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान आदि भी राम को बधाई देते है। अन्त मे ये सभी लोग पुष्पक विमान मे बैठ कर अयोध्या प्रस्थान करते है। इस प्रकार इस आनन्दपूर्ण समारोह के बीच नाटक की समाप्ति होती है।

भास का कथावस्तु में परिवर्तन

नाटककार भास ने रामायण से ली गई इस कथावस्तु को नाटकीय बनाने के लिए अपने प्रतिमा नाटक मे पर्याप्त परिवर्तन किया है, जो इस प्रकार है—

(1) इस नाटक के प्रथम अक मे प्राप्त होने वाली "वल्कल घटना" का रामायण मे कही सकेत नही है। भास ने इससे राम और सीता के मधुर पारिवारिक जीवन का एक दृश्य उपस्थित किया है।

(2) रामायण के अनुसार जब राजा दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करना चाहा, उस समय भरत और शत्रुघ्न दोनो अयोध्या से अनुपस्थित थे। किन्तु भास के प्रतिमा नाटक के अनुसार उस समय शत्रुघ्न अयोध्या मे ही थे। ननिहाल में केवल भरत को ही बताया गया है।

(3) दूसरे अंक में मृत्यु शय्या पर पड़े राजा दशरथ के सामने उनके स्वर्ग से आए पूर्वजो का जो दृश्य बताया गया है, वह भी भास की अपनी मौलिक कल्पना है। रामायण मे ऐसा वर्णन नही मिलता है।

(4) तीसरे अंक की "प्रतिमा गृह" की कल्पना का भी रामायण में अभाव है। भास की इसी नाटकीय कल्पना के आधार पर 'प्रतिमा' नाटक का नामकरण किया गया है। इसमे नाटककार ने कुशलतापूर्वक भरत को उसकी अनुपस्थिति मे होने वाली घटनाओं से अवगत कराया है।

(5) सीताहरण की घटना भी अत्यन्त कौतूहल पूर्ण है। दशरथ के श्राद्ध के लिए राम का चिन्तित होना, रावण का परिव्राजक के रूप मे राम के सामने उपस्थित होना तथा काञ्चनपार्श्व मृग आदि की कल्पनाएँ भास की निजी है।

(6) इस अवसर पर लक्ष्मण का किसी कुलपति के स्वागत के लिए बाहर जाने का जो उल्लेख प्राप्त होता है, वह भी रामायण मे नहीं है।

(7) छठे अंक मे सुमन्त्र का राम के दर्शन हेतु जनस्थान मे जाना और उनके माध्यम से भरत को सीताहरण की सूचना मिलना भी भास की सृष्टि है। रामायण मे ऐसा नही मिलता।

(8) कैकेयी की निर्दोषिता प्रकट करने के लिए श्रवण वध एवं उसके पिता द्वारा दिए गए शाप का उपयोग जिस रूप मे किया गया है, वह भास की अपनी विशेषता है।

(9) रामायण मे इस बात का संकेत नही है कि कैकेयी राम को केवल 14 दिन के लिए ही वन मे भेजना चाहती थी और घबराहट के कारण उसके मुख से "चौदह वर्ष" का कथन निकल गया।

(10) छठे अंक के अन्त मे रावण विजय के लिए भरत द्वारा अपनी सेना को तैयार करने का जो वर्णन किया गया है, यह भी भास की अपनी ही कल्पना है।

12- विवाह शुल्क — भरत लक्ष्मण से बड़े छोटे दिखाये

(11) सातवें अंक में जनस्थान मे ही राम के राज्याभिषेक का जो अंकन किया गया है, उसका रामायण मे सर्वथा अभाव है। इस प्रकार भास ने अपने प्रतिमा नाटक में ऐसे कई विवरण प्रस्तुत किए है, जो वाल्मीकि रामायण में नही हैं।

चरित्र-चित्रण

(1) राम निष्काम

(1) भास विरचित प्रतिमा नाटक के राम धीरोदात्त नायक है। वे अनासक्त होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले है। अपने जीवन के कठोर कर्मक्षेत्र में वे निष्काम भाव से अवतरित होते है। यहाँ तक कि वे अपने अतुलनीय पराक्रम से प्राप्त लका के साम्राज्य को भी विभीषण को दे देते है।

(2) राम के चरित्र मे प्रारम्भ से ही निर्लोभिता की भावना दृष्टि-गत होती है। कैकेयी से उन्हे वनवास मिला, पर फिर भी उनके हृदय में उसके प्रति आक्रोश की भावना नही है)। अपना अभिषेक छोड कर वन जाते समय वे तनिक भी विचलित नही होते। लोग उनके इस धैर्य पर आश्चर्य प्रकट करते है, किन्तु वे इसे सामान्य बात समझते है।

(3) राम का हृदय सहिष्णु तथा सुकुमार भावो से ओतप्रोत है। अपने वनवास के समाचारो से वे दुःखी होने के स्थान पर प्रसन्न ही होते है) और इस कार्य के लाभ गिनाते हुए कहते हैं कि "राजा दशरथ का वन जाना रुका, मुझ पर पिता का वैसा ही वात्सल्य बना रहा, प्रजा को भी नये राजा के अच्छे-बुरे झंझट से मुक्ति मिली एवं मेरे अन्य भाई भी ऐश्वर्य भोग से वचित न रहे।"

(4) प्रतिमा के राम का विनत भाव भी दर्शनीय है। वे अपनी सौतेली जननी की आज्ञा को सहज रूप से शिरोधार्य कर लेते हैं। उन्हें कैकेयी के प्रति थोड़ी सी भी अनास्था नही है) यदि कोई कैकेयी के विरुद्ध कुछ भी कहता है, तो राम उस का विरोध तथा कैकेयी के पक्ष का समर्थन करते हैं।

(5) (सीताहरण के अवसर पर रामायण के राम सीता की स्पृहा-विनोदन के लिए माया मृग मारीच के पीछे जाते हैं। परन्तु प्रतिमा के राम

श्राद्ध

पितृभक्त पुत्र के रूप में दशरथ के श्राद्ध हेतु कांचनपार्श्व मृग को लाने के लिए प्रस्थान करते हैं।

(2) सीता

(1) प्रतिमा की सीता का चरित्र भी अत्यन्त सुकुमार एवं उदात्त है। प्रथम अंक में जब वह अवदातिका और चेटी के साथ वार्तालाप करती हुई दिखाई देती है, तो वल्कल वस्त्र को देखकर सीता के हृदय मे स्वाभाविक रूप मे उसे पहनने की उत्कण्ठा जागृत होती है। यहाँ उसका भोलापन अत्यन्त सहज तथा आकर्षक है।

(2) सीता भी राम के समान ही उदार चरित्र वाली है। न तो उसे उस समय अत्यधिक प्रसन्नता होती है, जब उसे राम के अभिषेक की सूचना मिलती है, और न उसे अत्यन्त दुःख होता है, जब उसे राम के वनवास का पता चलता है। राजकुल के इस उतार-चढाव से उसे कोई लेना-देना नही है—"बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम।"

अश्वत्थामा (3) कैकेयी के आदेश को वह भी धीरता से सुनती है। जब लक्ष्मण आवेश में आकर स्वयं युद्ध करने हेतु धनुष धारण करने की बात कहता है, तो सीता राम से कहती है कि "देखो, लक्ष्मण ने रोने के अवसर पर धनुष उठाया है।" इससे पता चलता है कि सीता के हृदय में दशरथ के प्रति भी अपार सम्मान था।

(4) सीता का भरत के प्रति भी अपार वात्सल्य है। जब भरत ननिहाल से लौटकर वन में गए राम को वापस अयोध्या लाने जाता है और राम से अनुनय-विनय करता है, तो सीता के इस वाक्य मे, "आर्यपुत्र, अतिकरुण मन्त्रयते भरतः" सब कुछ प्रकट हो जाता है। उसकी ममता भरत को कुछ समय और अपने पास रखने को प्रेरित करती है।

(5) वनवास के जीवन में भी सीता अपने सहज कार्यों को सम्पन्न करती है। तपोवन के पादपो को पुत्रवत् अपना स्नेह प्रदान कर पालती है। राम का संकेत पाकर परिव्राजक के रूप मे आए रावण अतिथि का सत्कार करती है तथा उसके द्वारा अपहरण करने पर राम और लक्ष्मण को अपनी रक्षा हेतु पुकारती है।

(3) भरत

(1) महाकवि भास ने भरत का एक आकर्षक चरित्र उपस्थित किया है, जो पश्चात्ताप के दुःख की आँच से निखरा है। उसका व्यक्तित्व एक प्रबल संकल्प शक्ति पर आधारित है। परिस्थितियों के कारण भरत के जीवन में इतने उतार-चढ़ाव आते है कि वह बहता जाता है।

(2) अपने मन मे मधुर कल्पनाएँ संजोए हुए भरत ननिहाल से लौटता है, किन्तु अयोध्या के निकट प्रतिमा गृह मे विद्यमान दशरथ की मूर्ति को देखकर उसे नियति का क्रूर अट्टहास सुनाई देता है। वह कैकयी को बुरा-भला कह कर राम को लाने जनस्थान दौड़ता है, पर असफल रहता है।

(3) भरत का त्याग वास्तव मे स्तुत्य है, जो परिवार के विघटन को आगे नही बढने देता। वस्तुतः विश्व के इतिहास में ऐसा चरित्र दुर्लभ है, जो अपने को प्राप्त वैभव को इस प्रकार ठुकरा दे। व्यवहार मे तो हम दूसरी ही प्रकार की बातो को पाते है, जो भरत के आचरण से विलोम है।

(4) कैकयी के हृदय में अपने पुत्र भरत को राज्य दिलाने की विशेषाधिकार की भावना थी। किन्तु भरत ने उसे अपने भ्रातृत्व की वेदी पर चढा दिया। भरत का यह विचार अपने क्षणिक भावावेश पर नही, अपितु अन्तर्व्यथा से उत्पन्न श्रद्धा व निष्ठा की ज्वाला मे तपा हुआ था। तभी तो राम कहते हैं कि "जो यश मैंने दीर्घ काल मे पाया, भरत ने वह अति शीघ्र संचित कर लिया।" (4.26)

(5) राम के प्रति भरत की निरतिशय भावुकता श्रद्धामूलक थी। भरत के समर्पण, चिन्तन, साधन एवं जीवन मे भी राम ही थे। लक्ष्मण ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझ कर प्रकट किया है—

"अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति॥" (4.11)

(4) लक्ष्मण

(1) रामकथा के अन्तर्गत लक्ष्मण का चरित्र कठोरता एवं क्रोध से परिपूर्ण उपलब्ध होता है। किन्तु उसे कोमल, स्वाभाविक और सरल रीति से अभिव्यक्त कर नाटककार ने सांस्कृतिक चेतना का विकास किया है।

(2) लक्ष्मण के चरित्र में त्याग, भ्रातृप्रेम, आत्मविश्वास, वीरता

एवं उत्साह का एक समन्वित परिपाक है। उसका जीवन उच्छृंखल न होते हुए भी अत्यन्त उग्र है। उसका आचरण शिष्ट संकल्प, समुचित दृढ़ता और भक्तिपूर्ण शक्ति का प्रदर्शन है। फिर भी कभी-कभी वह उद्धत बन जाता है।

(3) जब लक्ष्मण को पता चलता है कि राम के अभिषेक में कैकेयी ने टाँग अड़ाई है, तो वे संसार से सभी युवतियों को समाप्त कर देने की घोषणा करता है। इस प्रकार उसमें वीरता है, किन्तु अमर्यादित। लक्ष्मण की वीरता में सन्तुलन का अभाव है। उसको इस प्रकार उद्धत बनने के लिए उसका भातृप्रेम ही बाध्य करता है।

(4) लक्ष्मण का धैर्य भयकर से भयंकर विपत्ति में भी बहिर्लिप्त वस्तुओं की अपेक्षा आन्तरिक निगूढताओं से अधिक मिला हुआ है। तभी तो राम के समझाने पर वह कहता है कि आपने मेरा आशय नहीं समझा। आपको राज्य से च्युत किया गया, इस कारण मुझे दुःख नहीं है, किन्तु मेरे क्रोध का कारण यह है कि आपको 14 वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा।

(5) इस प्रकार समग्र हृदय, आशा और आश्वासन, शक्ति और संकल्प, प्रेम और प्रार्थना से जीवन और यौवन को कर्त्तव्य की बलि वेदी पर चढ़ाने वाले लक्ष्मण अपने अग्रज राम का परम भक्त है।

(5) दशरथ

(1) राजा दशरथ एक स्नेही पिता है। सन्तान का स्नेह उनके जीवन का सम्बल है। वृद्धावस्था में उत्पन्न अपने चारों पुत्रों में से राम उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय है। तभी तो राम के वन चले जाने पर दशरथ पुत्र वियोग में व्याकुल होकर गिरते हैं, उठते हैं और हाय-हाय की रट लगाते हैं।

(2) यही पुत्र वियोग उनके सामने साक्षात् मृत्यु बन कर खड़ा हो जाता है। राम के अभाव में उनके प्राण जलहीन मछली की तरह छटपटाते हैं। इसके सामने दशरथ का सांसारिक स्नेह टूटता जाता है। वे अपने कष्ट से घबरा कर कहीं भाग नहीं पाते और दुःख का यह अस्तित्व उनमें एक विचित्र परिवर्तन ला देता है।

(3) दशरथ की यह पीड़ा और भी अधिक घनी हो जाती हैं। वे अपनी प्राणाधिक प्रिय पत्नी कैकेयी के लिए भी सोचते हैं कि यदि वह वन में

प्रतिज्ञा पालक

व्याघ्री बन जाती तो अच्छा रहता (2.8)। इस प्रकार राजा दशरथ के चरित्र मे अपूर्व पुत्र प्रेम ही अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है।

(4) कौसल्या के यह कहने पर कि 'मै वही अभागिनी हूँ" दशरथ तड़प उठते है। वे कहते है "नही, नही कौसल्ये, तुम धन्य हो। तुमने तो राम को गर्भ मे धारण किया है। अभागा तो मैं हूँ, जो अग्नि के समान असह्य इस दुःख को न सह सकता हूँ तथा न दूर कर सकता हूं।"

(5) इस प्रकार दशरथ अपने पुत्र वियोग में ही प्राणों को छोड देते है। उनकी मृत्यु मे अन्ध मुनि पुत्र का वध भी कारण माना गया है, जो उन्हें शाप के रूप मे प्राप्त हुआ था। एक पराक्रमी सम्राट का इस प्रकार का अन्त भाग्य की बलवत्ता और प्राणी की असहाय स्थिति को प्रकट करता है।

(6) कौसल्या

प्रतिमा की कौसल्या त्याग, तपस्या और अनुराग की प्रतिमूर्ति है। वह कैकेयी अथवा भरत से रुष्ट या क्षुब्ध नही होती। वह तो भरत को देखते ही अपने आशीष से उसे स्नान करा देती है—"जात, निस्सन्तापो भव।" अपनी जननी कैकेयी की अवहेलना करने वाले भरत को भी वह उपदेश देते हुए कहती है कि "तुम तो सदाचार का पालन करने वाले हो, फिर अपनी माँ की वन्दना क्यो नही करते।" इस नाटक की कौसल्या आदर्श की प्रतिमूर्ति है। उसका पारिवारिक स्नेह अर्थात, पुत्र प्रेम तथा पति प्रेम अपूर्व एवं उच्चकोटि का है। वह कमल से भी कोमल और वज्र से भी कठोर है। कैकेयी के कुचक्र के कारण राम का अभिषेक रुका तथा इसका अप्रिय व कठोर आघात कौसल्या को लगा। पहले तो वह तिलमिला उठती है, पर शीघ्र ही संभल जाती है। इसीलिए तो वह दुःखी और सन्तप्त महाराज दशरथ को अति गम्भीर तथा शान्त भाव से सान्त्वना देती है। वह यद्यपि महाराज से कैकेयी के विरुद्ध पता नही क्या-क्या कहने वाली थी, किन्तु स्वयं दशरथ की दशा देखकर इतना ही कह सकी—"महाराज, धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।" इस प्रकार भास द्वारा प्रस्तुत राम जननी कौसल्या सेवा, त्याग, ममता, करुणा, क्षमा आदि नारी हृदय की सभी उदात्त वृत्तियों का प्रतीक है।

(7) कैकेयी

भास द्वारा प्रस्तुत किया गया कैकेयी का चरित्र सर्वथा नवीन रूप में

प्राप्त होता है। कुमार भरत के सम्पर्क मे उसका हृदय पश्चात्ताप के आँसुओ से घुल कर सर्वथा स्वच्छ और निर्मल हो गया है। पहले तो प्रतिहारी से यह जान कर कि भरत उससे मिलने आया है, वह घबरा जाती है कि भरत, पता नही किस बात का उलाहना दे बैठे। किन्तु वह शीघ्र ही संभल जाती है और भरत के सामने राजा दशरथ को दिए अन्धमुनि के शाप का रहस्योद्‌घाटन करती है। वस्तुतः कैकेयी उदात्तचरिता है। उसने राम के लिए वनवास का वर इसलिए माँगा था कि उन्हें ऋषि के द्वारा दिए गए शाप से मुक्ति मिले। इस तथ्य को वह भरत के सामने उचित अवसर पर अर्थात् सीता हरण के बाद स्पष्ट कर देती है।

कैकेयी के चरित्र मे भावनाओ की गम्भीरता और विविधता का जैसा आदर्श दृढ रूप में प्रकट किया गया है, वैसा इतनी कुशलता के साथ किसी अन्य राम काव्य में उपलब्ध नही होता। प्रतिमा नाटक की कैकेयी स्वतन्त्र व्यक्तित्व के पूर्ण जीवन से ओतप्रोत है। इसमें सजीवता और स्वाभाविकता है। यह पात्र करुणा से भरा है। वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त होने पर इसके सम्मुख भरत भी नतमस्तक हो जाता है। रामायण की कैकेयी की तुलना में यह बहुत ही अच्छे रूप मे प्रस्तुत की गई है।

प्रतिमा नाटक के पद्यों की सूची

इस नाटक मे कुल 7 अंक तथा 157 पद्य है। क्रमानुसार इनकी सूची इस प्रकार है—1 अंक–31 पद्य, 2 अंक–21 पद्य, 3 अंक–24 पद्य, 4 अंक–28 पद्य, 5 अंक–22 पद्य, 6 अंक–16 पद्य तथा 7 अंक–15 पद्य। अकारादि क्रम से इनका विवरण इस प्रकार है—

नम्बर पद्य के प्रथम शब्द	अंक नंबर	पद्य नंबर
'अ' के 20 पद्य—		
1. अगं मे स्पृश	2	18
2. अक्षोभ्यः क्षोभितः	1	17
3. अत्र रामश्च सीता	4	4
4. अद्य खल्ववगच्छामि	4	12
5. अद्यैव यास्यामि	7	14
6. अधिगत-नृप-शब्द	7	12
7. अनपत्या वयं	2	8
8. अनुचरति शशांकं	1	25
9. अन्वास्यमानश्चिर	3	15
10. अपि सुगुण ममापि	4	21
11. अय ते दयितो	4	11
12. अयं सैन्येन महता	7	5
13. अयं हि पतित :	3	14
14 अयममरपतेः सखा	2	21
15. अयशासि यदि लोभः	3	21
16. अयोध्यामटवीभूता	3	10
17. असुर-समर-दक्षै	4	10
18. अह पश्चात् प्रवेक्ष्यामि	4	15
19. अहं हि दुःखम्	2	9
20. अहो बलमहो	5	14
'आ' के 4 पद्य—		
21. आदर्श वल्कलानीव	1	9

22. आपृच्छ पुत्रकृतकान्	5	11
23. आरब्धे पटहे	1	5
24. आशावन्तः पुरे	4	28
'इ' के 7 पद्य—		
25. इद गृह तत्	3	13
26. इद तत् स्त्रीमयं	4	14
27. इदानी भूमिपालेन	1	4
28. इय स्वय गच्छतु	4	13
29. इय हि नीलोत्पल	6	1
30. इयमेका पृथिव्या	5	8
31. इह स्थास्यामि देहेन	4	19
'उ' का 1 पद्य—		
32 उभयस्यास्ति सान्निध्य	5	9
'ए' के 3 पद्य—		
33. एतदार्याभिषेकेण	7	13
34. एते ते देवताना०	3	7
35. एते भृत्याः स्वानि	2	13
'क' के 10 पद्य—		
36. कमप्यर्थम् चिरम्	2	17
37. कर्णौ त्वरा	1	8
38. कस्यासौ मदशतरः	4	6
39. कामं दैवतमित्येव	3	5
40. काले खल्वागता	3	12
41. कुतः क्रोधो विनीतानाम	6	9
42. कृतान्त-शल्याभिहते	5	4
43. कृत्वा स्व वीर्यसदृश	6	4
44. क्रमप्राप्ते हृते	1	19
45. क्व ते ज्येष्ठो रामः	2	14

142. सत्यसन्ध जितक्रोध	2	6
143. सम वाष्पेण	1	6
144. समुदित-बल-वीर्यम्	7	2
145 सीताभव. पातु	1	1
146. सुग्रीवो भ्र शितो	6	10
147. सुचिरेणापि कालेन	4	26
148 सूर्य इव गतो	2	7
149. सौवर्णान् वा मृगा	5	12
150. स्वर्ग गते नरपतौ	4	1
151. स्वर्गेऽपि तुष्टि	7	11
152. स्वैरं हि पश्यन्तु	1	29
'ह' के 5 पद्य—		
153. हत्वा रिपुप्रभव०	7	10
154 हन्त भो सत्वयुक्ता	6	14
155. हा वत्स राम	2	4
156. हृदय भव सकामं	3	9
157. हृदयस्थितशोकाग्नि	6	5

पात्र-परिचय

प्रतिमा नाटक में, जो रामायण की कथावस्तु से सम्बन्ध रखता है, कुल 27 पात्र हैं। इनमे 16 पुरुष पात्र तथा 11 स्त्री पात्र है। इनके नाम इस प्रकार है—

पुरुष पात्र

(1) सूत्रधार—नाटक का स्थापक
(2) राजा—अयोध्यानरेश महाराज दशरथ
(3) राम—राजा दशरथ के बड़े पुत्र (नायक)
( ) लक्ष्मण—राम के भाई, सुमित्रा के पुत्र
(5) भरत—राम के भाई, कैकेयी के पुत्र
(6) शत्रुघ्न—राम के सबसे छोटे भाई
(7) सुमन्त्र—राजा दशरथ के मन्त्री
(8) सूत—भरत का सारथी
(9) रावण—लका का राजा (नाटक का प्रतिनायक)
(10) वृद्ध-तापस-द्वय—रावण व जटायु के युद्ध को देखने वाले
(11) देवकुलिक—प्रतिमागृह (मन्दिर) का पुजारी
(12) तापस—दण्डकारण्य के तपस्वी
(13) नन्दिलक—तपस्वी के परिजन
(14) भट—राजपुरुष
(15) सुधाकार—प्रतिमागृह मे सफेदी करने वाला
(16) काञ्चुकीय—अन्तःपुर (रनिवास) का वृद्ध सेवक

स्त्री पात्र

(1) नटी—सूत्रधार की स्त्री
(2) कौसल्या—राम की जननी, दशरथ की पहली रानी
(3) कैकेयी—भरत की जननी, दशरथ की दूसरी रानी
(4) सुमित्रा—लक्ष्मण व शत्रुघ्न की जननी, दशरथ की तीसरी रानी
(5) सीता—राम की पत्नी (नायिका)

(6) अवदातिका—सीता की सखी

(7) चेटी—सीता की सेविका

(8) प्रतिहारी—द्वारपालिका

(9) विजया कैकेयी के रनिवास की द्वारपालिका

(10) नन्दिनिका—कैकेयी की सेविका

(11) तापसी—दण्डकारण्य की तपस्विनी

प्रतिमा नाटकम्

प्रथम अंक

(१) मूल

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः
सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या
विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥ (१)
(नेपथ्याभिमुखम् अवलोक्य)
आर्ये ! इतस्तावत् ।
(प्रविश्य)

नटी—आर्य ! इयमस्मि ।

सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानी शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् ।

नटी—आर्य ! तथा । (गायति)

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले,
चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा ।
(नेपथ्ये)
आर्य ! आर्य !
(आकर्ण्य)

सूत्रधारः— भवतु, विज्ञातम् ।
मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥ (२)
(निष्क्रान्तौ)
स्थापना ।

शब्दार्थ—नान्द्यन्ते=मंगलाचरण के अन्त मे । सीताभवः = सीता आनन्ददाता । पातु = रक्षा करें । सुमन्त्रतुष्टः = अच्छे मन्त्र के पक्षपाती

सुग्रीवरामः = अच्छे कण्ठ वाले राम। सहलक्ष्मणः = लक्ष्मण के सहित। रावणारि=रावण के शत्रु। अप्रतिमः=निरूपम वीर। देव्या=सीता के साथ। विभीषणात्मा = शत्रुओ के लिए भयकर। भरतः = श्रीराम (भरः भरणम् जगद्रक्षणम् त तनोति इति भारतः अर्थात् ससार की रक्षा करने वाले)। अनुसर्गम् = जन्म-जन्म मे (सर्गे सर्गे प्रति अनुसर्गम् अर्थात् जन्मनि-जन्मनि प्रादुर्भावम्)। नेपथ्याभिमुखम्=पर्दे की ओर। अवलोक्य=देख कर। शरत्कालम् = शरद् ऋतु के। अधिकृत्य = सम्बन्ध मे। चरति=चल रही है। पुलिनेषु = किनारो पर। काशांशुकवासिनी=काश के फूलों के समान धवल प्रकाश वाली। सुसंहृष्टा = प्रसन्न हृदय वाली। मुदिता = प्रसन्नचित्त वाली। नरेन्द्रभवने = राजमहल में। त्वरिता = शीघ्रतापूर्वक। प्रतिहाररक्षी इव = द्वारपालिका के समान। स्थापना = प्रस्तावना।

अन्वय—सीताभव. सुमन्त्रतुष्टः सहलक्ष्मणः च सुग्रीवरामः अनुसर्गम् पातु। यः च रावणार्यप्रतिम. देव्या विभीषणात्मा भरतः। (१)

अन्वय—काशाशुकवासिनी सुसंहृष्टा हसी पुलिनेषु चरति, नरेन्द्रभवने मुदिता त्वरिता प्रतिहाररक्षी इव। (२)

हिन्दी अर्थ

(नान्दी पाठ के अन्त मे सूत्रधार आता है)

सूत्रधार—सीता के जीवन, सद् विचार से सन्तुष्ट, लक्ष्मण के सहचर और सुन्दर शरीर वाले राम जन्म-जन्मान्तर में आप दर्शको की रक्षा करें, जो रावण के शत्रु, अद्वितीय वीर, सीता देवी के साथ, शत्रुओं को भयभीत करने वाले तथा ससार का भरण-पोषण करने वाले हैं। (१)
(नेपथ्य की ओर देख कर)
आर्ये, जरा इधर तो आना।

नटी—आर्य, यह आ गई हूं।

सूत्रधार—अब इसी शरद् ऋतु के सम्बन्ध में कुछ गाओ।

नटी—आर्य, ठीक है। (गाती है।)

सूत्रधार—अरे, इस शरद् ऋतु के समय में—
काश के पुष्पो के सदृश श्वेत प्रकाश वाली हसी प्रसन्न चित्त होकर नदी के तट पर विचरण कर रही है।

(नेपथ्य में)

आर्य, आर्य,

(सुनकर)

सूत्रधार-- अच्छा, समझ गया !

जिस तरह काश पुष्पो के समान श्वेत रेशमी वस्त्र पहने प्रसन्नहृदय द्वारपालिका शीघ्रतापूर्वक महाराज दशरथ के अन्तः-पुर में घूम रह है। (२)

(दोनो निकल जाते हैं।)

इति स्थापना।

(२) मूल

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—आर्य ! क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि। किं क्रियताम् ?

प्रतिहारी—आर्य ! महाराजो देवासुरसंग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति–शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोग कारका अभिषेकसम्भारा आनीयन्तामिति।

काञ्चुकीयः—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन, तत् सर्वम् सक ल्पितम्। पश्य–

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं

न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः।

युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः

सर्वस्यास्य हि मंगलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः॥ (३)

प्रतिहारी–यद्येवं, शोभनं कृतम् !

काञ्चुकीयः–हन्त भोः !

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।

रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता॥ (४)

प्रतिहारी—त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः।

काञ्चुकीयः—भवति ! इदं त्वर्यते। (निष्क्रान्तः)

प्रतिहारी—(परिक्रम्यावलोक्य) आर्य ! सम्भवक ! सम्भवक !

गच्छ, त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय। (अन्यतो गत्वा) सारसिके! सारसिके! सगीतशालां गत्वा नाटकीयानाविज्ञापय कालसवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति। यावदहमपि सर्वम् कृतमिति महाराजाय निवेदयामि।
(निष्क्रान्ता)

शब्दार्थ – सन्निहित: = उपस्थित । अप्रतिहतमहारथ: = अबाध गति युक्त महान् रथ वाले। भर्तृदारकस्य = राजकुमार । राज्यप्रभावसयोगकारका:=राज्य के तेज के सम्बन्ध का सम्पादन करने वाले। अभिषेकसम्भारा:= अभिषेक का सामान । आनीयन्ताम् = तैयार किया जाए । संकल्पितम् = जुटाया गया है। सव्यजनम् = चँवर के सहित। सनन्दिपटहम् = आनन्दपूर्वक वाद्यविशेष। भद्रासनम् = मगलमय आसन। कल्पितम् तैयार है। न्यस्ता: = रख दिए गए है । हेममया:=सोने के बने। सदर्भकुसुमा: = डाभ घास और फूलो के सहित। घटा: = घडे। पुष्यरथ:=क्रीडा विहार के प्रयोजन का रथ। पौरा: = नगर के लोग। समभ्यागता: = आ गए हैं। मंगलम् = कुशल करने वाले। वेद्याम् = अनुष्ठान के स्थान पर। हन्त = प्रसन्नता की बात है। कृतकृत्या: = सफल मनोरथ वाले। रामाभिधानम् = राम नाम वाले। मेदिन्यां= पृथ्वी पर। शशाङ्कम्=चन्द्रमा को। अभिषिञ्चता=अभिषेक करने वाले। त्वरता = जल्दी करो। त्वर्यते = शीघ्रता की जा रही है। सम्भवक = सेवक का नाम। आर्य-पुरोहितम्=वामदेव आदि श्रेष्ठ पुरोहित को। यथोपचारेण= समुचित सत्कार के साथ। सारसिके=अरी सारसिका (किसी नटी का नाम)। संगीतशालाम्=नाट्यशाला मे। नाटकीयानाम्=नटो को। विज्ञापय = सूचित करो। कालसवादिना = अभिषेक के समयोचित। सज्जा = तत्पर।

अन्वय—छत्रम् सव्यजनम्, सनन्दिपटहम्, भद्रासनम् कल्पितम्, सदर्भकुसुमा: हेममया: तीर्थाम्बुपूर्णा: घटा: न्यस्ता:, च पुष्यरथ; युक्त:, मन्त्रिसहिता: पौरा: समभ्यागता:, हि अस्य सर्वस्य मंगलम् स: भगवान् वसिष्ठ: वेद्याम् स्थित:। (३)

अन्वय—इदानीम् मेदिन्याम् रामाभिधानम् शशाङ्कम् अभिषिञ्चता भूमिपालेन प्रजा: कृतकृत्या: कृता.। (४)

हिन्दी अर्थ

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—आर्य, यहा पर कौनसा कचुकी विद्यमान है?

(प्रवेश करके)

काञ्चुकीय—देवी, यह मैं हूं । क्या किया जाए ?

प्रतिहारी—आर्य, देवासुर युद्ध मे अद्वितीय पराक्रम वाले महाराज दशरथ आज्ञा दे रहे है कि—शीघ्र राजकुमार राम के राजोचित प्रभुत्व के परिचायक राज्याभिषेक की सारी सामग्रिया प्रस्तुत की जायें ।

काञ्चुकीय—हे देवी, महाराज ने जो आदेश दिया है, वह सब पूरी तरह से तैयार है । देखो—

ये छत्र और चंवर है । ये आनन्ददायक बाजे हैं । यह मांगलिक आसन भी तैयार है । यहा कुश और पुष्पों के सहित, सोने के बने हुए घडों मे तीर्थों का जल भी भर. कर रख दिया है । क्रीड़ा रथ भी जुता हुआ खडा है । मन्त्रियों के साथ पुरवासी लोग भी आ गए है और इस समूचे मंगलदायक आनन्द के करने वाले ये भगवान् वशिष्ठ भी वेदी पर विराजमान. हैं । (३)

प्रतिहारी—यदि ऐसा है, तो बहुत सुन्दर किया ।

काञ्चुकीय—अहो, बडे हर्ष की बात है ।

इस समय पृथ्वी पर राम नाम वाले चन्द्र का राज्याभिषेक करके राजा दशरथ ने अपनी प्रजा को सफल मनोरथ वाली कर दिया है । (४)

प्रतिहारी—आप अब शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए ।

काञ्चुकीय—हे देवी, यह शीघ्रता कर रहा हूं । (निकल जाता है)

प्रतिहारी–(घूम कर और देख कर)आर्य सम्भवक, सम्भवक, जाओ, और तुम भी महाराज के आदेशानुसार पूज्य पुरोहित को सम्मान सहित शीघ्र बुला लाओ । (दूसरी ओर जाकर) अरी सारसिके, सारसिके, नाटक गृह मे जाकर अभिनय करने वालों से कहो कि—वे आज सामयिक अभिनय दिखाने को तैयार रहे । तब तक मैं भी "सब कुछ तैयार है" ऐसी सूचना महाराज को देती हूं ।

(निकल जाती है ।)

(२) मूल

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा)

अवदातिका—अहो अत्याहितम् । परिहासेनापीमं वल्कल- मुपनयन्त्या ममैनावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परवनं हरतः । हसितुमिवेच्छामि । न खल्वेकाकिन्य हसितव्यम् ।

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता—हञ्जे ! अवदातिका परिशंकितवर्णा दृश्यते। किन्नु खल्वेतत् ।

चेटी—भट्टिनी ! सुलभापराधः परिजनो नाम । अपराद्धा भविष्यति ।

सीता—नहि नहि, हसितुमिवेच्छति ।

अवदातिका—(उपसृत्य) जयतु भट्टिनी । भट्टिनी ! न खल्वहमपराद्धा ।

सीता—का त्वां पृच्छति। अवदातिके ! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम् ।

अवदातिका—भट्टिनी ! इदं वल्कलम् ।

सीता—वल्कलं कस्मादानीतम् ?

अवदातिका—शृणोतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निवृत्तरंगप्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत् । न च तया दत्तम् । ततोऽहं त्वपराध इतीदं गृहीतम् ।

सीता—पापकं कृतम् । गच्छ, निर्यातय ।

अवदातिका-भट्टिनी ! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम् ।

सीता—उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय निर्यातय ।

अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (प्रस्थातुमिच्छति)

सीता—हला ! एहि तावत् ।

अवदातिका—भट्टिनी ! इयमस्मि ।

सीता हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते ।

अवदातिका—भट्टिनी ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलंकरोतु भट्टिनी ।

सीता—आनय तावत् । (गृहीत्वालंकृत्य) हला ! पश्य, किमिदानीं शोभते ?

अवदातिका—तव खलु शोभते नाम । सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम् ।

सीता—हञ्जे ! त्वं किञ्चिन्न भणसि ।

चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम् । इमानि प्रह्लपितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते । (पुलकं दर्शयति)

सीता—हञ्जे ! आदर्शम् तावदानय ।

चेटी—यद् भट्टिन्याज्ञापेयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनी ! अयमादर्शः ।

सीता—(चेटीमुखं विलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः । त्वं किमपि वक्तुकामेव ।

चेटी—भट्टिनी ! एवं मया श्रुतम् । आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति-अभिषेकोऽभिषेक इति ।

सीता—कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति ।

(प्रविश्यापरा)

चेटी—भट्टिनी ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् ।

सीता—किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे ।

चेटी—भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते ।

सीता—अपि तातः कुशली ?

चेटी—महाराजेनैवाभिषिच्यते !

सीता—यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम् । विशालतरमुत्सगं कुरु ।

चेटी—भट्टिनी ! तथा । (तथा करोति)

सीता—(आभरणान्यवमुच्य ददाति)

चेटी—भट्टिनी ! पटहशब्द इव ।

सीता—स एव ।

चेटी—एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः ।

सीता—को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य । अथवा (बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम !)

चेटी—भट्टिनी ! एवं मया श्रुतम्-भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति ।

सीता—यद्येवं, न तदभिषेकोदकं मुखोदकं नाम ।

शब्दार्थ—अवदातिका=सीता की सखी का नाम। वल्कलम्=वृक्ष की त्वचा का बना वस्त्र। अत्याहितम् = अति+अहितम् = बहुत बुरा। उपनयन्त्या = लाने वाली। हरतः = चुराने वाले का। सपरिवारा = सेविका के साथ। हञ्जे = अरी (यह स्त्री पात्र द्वारा सेविका आदि के लिए कहा जाने वाला सम्बोधन है)। परिशंकितवर्णा=मानसिक आशंका से व्याकुल आकार वाली। इव = समान। परिजन = सेवक। वामहस्तपरिगृहीतम् = बाएं हाथ मे लिए हुए। नेपथ्यपालिनी = ग्रीन रूम की रक्षा करने वाली। रेवा = रक्षिका का नाम। निवृत्तरंगप्रयोजनम्=अभिनय का उपयोग समाप्त हो जाने वाले। किसलयम् = कोमल पत्ते को। निर्यातय = वापस लौटा दो। तनूरुहाणि = शरीर के रोंए। आदर्शम् = काच को। आर्यबालाकिः = कञ्चुकी का नाम। प्रियाख्यानिकम् = खुशखबरी। प्रतीष्य = मन में रख कर (उपलभ्य)। उत्संगम् = गोद या झोली। अवमुच्य = उतार कर। पटहशब्दः = नगाडो की ध्वनि। एकपदे = शीघ्र। अवघट्टिततूष्णीकः=बजते बजते बन्द होना। उद्घात = विघ्न। बहुवृत्तान्तानि = अनेक प्रकार के कथन वाले। मुखोदकम्= मुंह के आंसू धोने का जल।

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद अवदातिका वल्कल वस्त्र लिए हुए आती है)

अवदातिका—ओह, बडा बुरा हुआ। विनोद मे भी इस वल्कल वस्त्र को उठा लाने से जब मै इतनी डर गई हूं, तो लोभ से दूसरो के धन को हरने वालो की क्या दशा होती होगी। हंसने की इच्छा सी हो रही है। किन्तु अकेली को नही हंसना चाहिए।

(इसके बाद सीता सेविका के साथ आती है)

सीता—अरी सखी, अवदातिका कुछ डरी हुई सी दीख रही है। यह क्या बात है?

चेटी—महारानी, सेवको से कुछ न कुछ अपराध हो ही जाता है। इससे भी कोई अपराध हो गया होगा।

सीता—नही, नही। वह तो हसना भी चाहती है।

अवदातिका—(पास जाकर) महारानी की जय हो। महारानी, मैंने कुछ अपराध नहीं किया है।

सीता—तुम से कौन पूछ रहा है? अरी अवदातिका, यह तुम्हारे वायें हाथ मे क्या है?

अवदातिका—महारानी, यह वल्कल वस्त्र है।

सीता—यह वल्कल कहां से लाई हो?

अवदातिका—महारानीजी सुनिए। नेपथ्य रक्षिका आर्या रेवा है। उससे मैंने कहा कि यह अशोक पत्र, जो कि नाटक में काम आ चुका है, हमें दे दे। किन्तु उसने नहीं दिया। इस कारण उसके स्थान में यह वल्कल ही उठा लाई।

सीता—यह तो बुरा किया। जा वापस लौटा दे।

अवदातिका—महारानी, इसे तो मैं हंसी में ले आई हूं।

सीता—अरी पागल, इसी प्रकार तो बुराई बढ़ती है। जा, इसे लौटा दे, लौटा दे।

अवदातिका—जैसी महारानी जी की आज्ञा। (जाना चाहती है)

सीता—अरी, जरा इधर तो आ।

अवदातिका—महारानी, यह मैं आई।

सीता—अरी, क्या यह वल्कल मुझे भी अच्छा लगेगा?

अवदातिका—महारानी, सुन्दर रूप पर तो सभी चीजें खिलती हैं। आप इसे धारण करें।

सीता—अच्छा ला। (लेकर तथा पहन कर) अरी, देख तो। क्या अब यह अच्छा लगता है?

अवदातिका—आपको तो अच्छा लगता है। यह वल्कल तो अब सुवर्ण निर्मित सा प्रतीत होता है।

सीता—हे सखी, तुम कुछ नहीं बोल रही हो।

चेटी—बोलने की आवश्यकता ही नहीं है। ये हमारे प्रसन्न रोमांच ही कह रहे हैं। (पुलकित होती है)

सीता—अरी सखी, जरा शीशा तो ला।

चेटी—जैसी महारानी की आज्ञा। (जाकर और आकर) महारानी, यह शीशा लीजिए।

सीता—(चेटी के मुख की ओर देख कर) इस दर्पण को रहने दे। तू कुछ कहना चाह रही है, ऐसा लगता है।

चेटी—महारानी, मैंने ऐसा सुना है। आर्य बालाकि कंचुकी कह रहे थे—राजतिलक है, राजतिलक है।

सीता—हां, किसी का राजतिलक होगा।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

चेटी—महारानी, शुभ समाचार है, शुभ समाचार है।

सीता—क्या बात है। क्या मन मे रख कर बोल रही है?

चेटी—सुना है राजकुमार का अभिषेक हो रहा है।

सीता—पिताजी सकुशल तो है?

चेटी—महाराज ही तो अभिषेक करा रहे है।

सीता—यदि ऐसा है, तो मैने दूसरी शुभ सूचना सुनी। अपना आंचल फैला।

चेटी—महारानी, जो आज्ञा। (वैसा ही करती है)

सीता—(अपने आभूषण उतार कर देती है।)

चेटी—महारानी, बाजे की आवाज सी सुन रही हूं।

सीता—हा, वही है।

चेटी—अचानक बाजे बजने बन्द हो गये।

सीता—अभिषेक मे कौन सा विघ्न आ पड़ा? अथवा राजपरिवारो मे अनगिनत घटनाएं होती ही रहती है।

चेटी—महारानी, मैंने ऐसा सुना है कि राजकुमार का तिलक करके महाराजा वन में चले जायेगे।

सीता—यदि ऐसा है, तो फिर यह अभिषेक का जल न होकर मुंह के आंसू धोने का पानी होगा।

(४) मूल

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—हन्त भोः!

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लंघिते
स्कन्धोच्चारण-नम्यमानवदन-प्रच्योतितोये घटे।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः॥(५)

"विश्रम्यतामिदानी पुत्रे" ति स्वयं राज्ञा विसर्जित—स्यापनीतभारोच्छ्‌वसितमिव मे मनः। दिष्ट्या स एवास्मि रामः,

महाराज एव महाराजः । यावदिदानी मैथिलीं पश्यामि ।

अवदातिका—भट्टिनी ! भर्तृदारकः खल्वागच्छति । नापनीत वल्कलम् ?

रामः—मैथिलि ! किमास्यते ?

सीता—हम् आर्यपुत्र । जयत्वार्यपुत्रः ।

राम.—मैथिलि ! आस्यताम् । (उपविशति)

सीता—यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति)

अवदातिका—भट्टिनी ! स एव भर्तृदारकस्य वेषः ।

अलीकमिवतद् भवेत् ।

सीता—तादृशो जनाऽलीक न मन्त्रयते । अथवा वहुवृत्तन्तानि राजकुलानि नाम ।

रामः—मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ।

सीता—न खलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति-अभिषेकोऽभिषेक इति ।

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिषेकः । श्रूयताम् । अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकार संक्षिप्त कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्र स्निग्धमाभाष्य "पुत्र राम ! प्रतिगृह्यता राज्यम्" इत्युक्तः ।

सीता—तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम् ?

राम.—मैथिलि ! त्वं तावत् किं तर्कयस ?

सीता—तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घम् निःश्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति ।

रामः—सुष्ठु तर्कितम् । अस्य तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते । तत्र हि पादयोरस्मि पतित. ।

सम बाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यध ।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥ (६)

सीता—ततस्ततः ।

राम. —ततोऽप्रतिगृह्यमाणेऽनुनये ? आमन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः ।

शब्दार्थ-लंघिते=आरूढ़ होने पर। स्कन्धोच्चारण=कंधो तक ऊंचा उठा कर। नम्यमानवदन = घड़ो के मुख को झुका कर। प्रच्योतितोये=जल को गिराने पर। विसर्जिते = विदा करने पर। विस्मितः = आश्चर्यचकित। विस्मयः = आश्चर्य। अपनीतभारोच्छ्वसितम्=बोझ के उतर जाने से हल्का। दिष्ट्या = सौभाग्य से (यह शब्द अव्यय है)। मैथिलीम्=सीता को। आस्यते= बैठी हुई हो। अलीक = मिथ्या। दारिका = लडकी। अवगच्छामि=समझता हूं। कौतूहलम् = उत्सुकता को। प्रकृतिजन = प्रजा के प्रमुख लोग। बाल्याभ्यस्त = शैशव से परिचित। अङ्कम् आरोप्य = गोद मे बैठा कर। मातृगोत्र = माता के नाम से अर्थात् कौसल्यानन्दन कह कर। स्निग्धं=प्रेमपूर्वक। आभाष्य = बोलकर। प्रतिगृह्यताम् = स्वीकार करो। तदानीम् = तब। आर्यपुत्रेण = पतिदेव के द्वारा। तर्कयसि = अनुमान करती हो। अभणित्वा = नही बोल कर। पादमूलयोः = दोनो पावो पर। सुष्ठु = ठीक। तुल्यशीलानि = समान स्वभाव वाले। द्वन्द्वानि = स्त्री-पुरुषो के युगल। सृज्यन्ते = बनाए जाते हैं। समम् = एक साथ। बाष्पेण = आसुओ से। क्लेदितौ = गीले हो गए।

अन्वय—पटहे आरब्धे, गुरुजने स्थिते भद्रासने लङ्घिते, घटे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये, राज्ञा आहूय, विसर्जिते मयि, जनः मे धैर्येण विस्मिय। भो., यदि स्वः पुत्र. पितुः वचः कुरुते, तत्र कः विस्मय.। (५)

अन्वय— समम्, तस्य बाष्पेण ममोपरि पतता, मम अधः पतता, मम शिर' क्लेदितम्, मे पितु' पादौ क्लेदितौ च। (६)

हिन्दी अर्थ

(राम का प्रवेश)

राम—ओह,

बाजे बजने लगे थे। गुरुजन वहाँ पर उपस्थित थे। मै सिहासन पर समासीन था। तीर्थो क जल से भरे हुए मगल कलशो को उठाकर मेरा अभिषेक किया जा रहा था। इतना हो जाने पर भी महाराजा ने मुझे बुलाकर बिदा कर दिया। इस स्थिति मे मेरी दृढ़ता पर लोग आश्चर्य मे हो गए। किन्तु अपना पुत्र यदि पिता की आज्ञा को पालता है, तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? (५)

"पुत्र, इस समय राज्याभिषेक को रहने दो" इस प्रकार स्वयं महाराजा से बिदा प्राप्त कर, अपने भार का उतरा समझ कर मेरा मन छुटकारे

की साँस ले रहा है। सौभाग्य से मैं वही राम हूं और महाराज, महाराज ही है। तो फिर अब सीता से मिल लूं।

अवदातिका — महारानी, ये राजकुमार आ रहे हैं। आपने तो वल्कल नही उतारा।

राम—सीते, क्या बैठी हुई हो ?

सीता—ऐ, पतिदेव हैं। पतिदेव की जय हो।

राम—सीते, बैठो। (बैठते है)

सीता - जो आज्ञा। (बैठ जाती है)

अवदातिका – महारानी, राजकुमार का वेश तो अभी भी वही है।—वह बात झूठी सी लगती है।

सीता—वैसे आदमी झूठी खबर नही फैलाते। अथवा राजपरिवारों मे अनेको घटनाएं होती रहती है।

राम—हे सीते, यह क्या कह रही हो ?

सीता—कुछ नही। यह लडकी अभिषेक-अभिषेक कह रही थी।

राम—मैं तुम्हारी उत्कण्ठा समझ रहा हूं। हाँ, आज अभिषेक था। सुनो। आज पिताजी ने आचार्य, मन्त्री, पुरवासीगण, सभी की उपस्थिति मे एक प्रकार से छोटा सा दरबार लगा कर, मुझे बाल्यावस्था से परिचित अपनी गोद मे बैठा कर, बडी ममता से "कौशल्या नन्दन" के नाम से बुला कर कहा—बेटा, यह राज्यभार स्वीकार करो।

सीता—इस पर आपने क्या कहा ?

राम—सीते, तुम इस पर क्या अनुमान करती हो ?

सीता—मेरा विचार है कि उस समय आप बिना कुछ बोले ही लम्बी सास लेकर महाराज के चरणो पर गिर गए होगे।

राम—ठीक सोचा। विधाता एक जैसे विचार वाले जोडे कम ही बनाता है। मैं सचमुच उनके चरणो मे जा गिरा। उस समय मेरी और पिताजी की आखे एक साथ भर आई। उनके आसुओ से मेरा सिर और मेरे अश्रुजल से उनके चरण कमल भीग गए।

सीता—इसके बाद क्या हुआ ?

राम—इसके बाद जब मैने उनकी अनुनय को अस्वीकार कर दिया, तब उन्होंने अपने जीर्ण-शीर्ण प्राणो की शपथ दी।

राम—तब फिर क्या हुआ ?

मूल

लक्ष्मणः—ततस्तदानीम्,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते ।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥ (७)

सीता—प्रियं मे । महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! किमर्थम् विमुक्तालङ्कारासि ?

सीता—न खलु तावदाबध्नामि ।

रामः—न खलु । प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम् । तथाहि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ॥ (८)

शब्दार्थ—सम्भ्रान्तया = घबराहट मे आने वाली । मन्थरया = मन्थरा नामक दासी के द्वारा । अभिहितम् = कहा गया । न चास्मि = च + अस्मि = मैं नहीं हूं अर्थात् मै नही बना । विमुक्तालङ्कारा = आभूषणो का परित्याग करने वाली । असि = (तुम) हो । प्रत्यग्रावतारितैः = अभी-अभी उतारे गए । भवितव्यम् = होनी चाहिए । त्वरा = शीघ्रता से । भुग्नपाशौ - टेढे बने ग्रन्थि के समान भूषण धारण के स्थान वाले (दोनों कान) । संस्रंसित = दूर करना या हटाना । गौरतलौ = स्वेत वर्ण की हथेलियो वाले । आभरणभारतनानि = गहनो के बोझ से झुके । गात्रे = शरीर पर । स्थानानि = भाग । समताम् = स्वाभाविक स्थिति मे । उपयान्ति = प्राप्त होते हैं । तावत् = अभी तक ।

अन्वय—शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे अभिषेके, रुदता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते, सम्भ्रान्तया मन्थरया राज्ञः कर्णे शनैः किमपि अभिहितं च, न च राजा अस्मि । (७)

अन्वय—कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ, हस्तौ च संस्रसिता गौरतलौ, गात्रे आभरणभारनतानि एतानि स्थानानि तावत् समता उपयान्ति । (८)

हिन्दी अर्थ

राम—तब उस समय—

शत्रुघ्न और लक्ष्मण ने तीर्थजल के घड़े को थामा, रोते हुए राज ने स्वतः छत्र सम्भाला और इस प्रकार अभिषेक का प्रारम्भ हुआ । इतने मे ही हाफती हुई मन्थरा ने आकर राजा कानो मे धीरे से कुछ कहा और मैं राजा नही हुआ । (७)

सीता—यह मुझे अच्छा लगा । महाराज महाराज ही रहे और आर्य आर्यपुत्र ही रहे ।

राम—सीते, गहनो को क्यो उतार डाला ?

सीता—नही, नही, पहना करती हूँ ।

राम—नही तो, पहनती तो हो । गहने अभी ही उतारे जान पड़ते है क्योकि—

शीघ्रता मे आभूषण उतारने के कारण कानो के छेद अभी भी नीचे की ओर झुके हुए हैं । हस्ताभरण उतारने के कारण दब पड़ने से हथेलियो का रग अभी भी पहले की तरह नही हुआ है आभूषणो के भार से झुके हुए तुम्हारे शरीर के ये अवयव अभी स्वाभाविक दशा को प्राप्त नही कर सके है । (८)

(९) मूल

सीता—पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।

रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम् । अहमादर्शम् धारयिष्ये । (तथ कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ ।

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः ।
हसितेन परिज्ञात क्रीडेय नियमस्पृहा ॥ (९)
अवदातिके ! किमेतत् ?

अवदातिका—भर्त. ! "किन्नु खलुशोभते न शोभते' इति कौतूहलेन बद्धानि ।

रामः—मैथिलि ! किमिदम् ? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते। अस्त्यस्माक प्रीतिः। आनय।

सीता—मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु।

रामः—मैथिलि ! किमर्थम् वारयसि ?

सीता—उज्झताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति।

रामः- मा स्वय मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया॥ (१०)

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः।

सीता— आर्यपुत्र ! किमेतत् ?

राम—(आकर्ण्य)

नारीणां पुरुषाणा च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताड़ितम्॥ (११)

तूर्णम् ज्ञायता शब्दः।

शब्दार्थः—पारयति = समर्थ है। अलीकम्-असत्य को। धारयिष्ये= पकड़ रहूँगा। निर्वर्ण्य = देखकर। सूर्यरश्मय.=सूर्य की किरणें। परिज्ञातम् =समझ लिया है। नियमस्पृहा=व्रत लेने की अभिलाषा। वृद्धालङ्कार = बुढापे की शोभा। वारयसि=मना कर रही हो। उज्भिताभिषेकस्य = राज्याभिषेक का परित्याग करने वाले। अमङ्गलम् इव=अशुभ के समान। प्रतिभाति=ज्ञात होता है। मा=मत। मन्युम्=क्रोध को। उत्पाद्य = उत्पन्न करके। शरीरार्धेन=शरीर के आधे भाग द्वारा। आवद्धा = बाध लिया है। निर्मर्यादः=उच्चता की सीमा से रहित अर्थात् करुणापूर्ण। सुव्यक्तम्=सुस्पष्ट है। प्रभवामि=समर्थ हूँ। मूले प्रधान स्थान बने महाराज पर। दैवेन= विधाता के द्वारा। ताडितम्=प्रहार किया गया है। तूर्णम्-शीघ्रता से।

अन्वय--आदर्शे वल्कलानि इव एते सूर्यरश्मय किम् हसितेन परिज्ञातम्, इय क्रीडा, नियमस्पृहा। (९)

अन्वय—परिहासे स्वय मन्यु मा उत्पाद्य। हि यदा मे शरीरार्धेन त्वया पूर्वम् आवद्धा। (१०)

अन्वय—नारीणा पुरुषाणा च यदा निर्मर्यादः ध्वनिः, प्रभवामि इति दैवेन मूले ताडितम् इति सुव्यक्तम्। (११)

हिन्दी अर्थ

सीता—आप असत्य को भी सत्य के समान कह सकते है।

राम—तो फिर तुम आभूषण पहनो। मैं काच दिखाता हूँ। (वैसा करके, देख कर) ठहरो।

दर्पण में यह कुछ वल्कल-सा दीख रहा है। कहीं ये सूर्य की किरणें तो नहीं है। अच्छा, तुम्हारी हँसी ने सारा रहस्य बता दिया। सच बताओ, क्या इसे हँसी खेल मे पहना है अथवा साधना करने का ही विचार है। (९)

अवदातिके, क्या बात है ?

अवदातिका—स्वामी, "क्या यह अच्छा लगता है अथवा नही" इसी उत्सुकता मे पहन लिया है।

राम—सीते, क्या ऐसा ही है। तुमने तो इक्ष्वाकुवंशियो की वृद्धावस्था के आभूषण इस वल्कल को धारण कर लिया है। हमारी भी इसमे रुचि है। लाओ तो।

सीता—नही, आप ऐसी अपशकुन की बात मत करिए।

राम—हे सीते, तुम क्यो मुझे रोक रही हो ?

सीता—अभी-अभी आपका अभिषेक होते-होते रुक गया है। अत. आपका वल्कल धारण करना मुझे अशुभ-सा लगता है।

राम—हास-परिहास मे तुम स्वयं दैन्य (मन्यु) को उत्पन्न मत करो अर्थात् विनोद मे अमगल की आशका मत करो। क्योकि जब मेरी अर्धाङ्गिनी होकर तुमने पहले ही वल्कल पहन लिया, तो समझो मैंने भी पहन लिया। (१०)

(नेपथ्य में)

हाय, हाय, महाराज !

सीता—आर्य पुत्र, यह क्या है ?

राम—(सुनकर) पुरुषो और स्त्रियो का जब यह सम्मिलित आर्त्त स्वर सुनाई पड़ रहा है, इससे प्रतीत होता है कि विधाता ने यह सिद्ध करने के लिए कि "मैं सर्वशक्तिमान हूँ" मूल पर ही प्रहार किया है। (११)

इस कोलाहल का शीघ्र पता लगाओ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीय.—परित्रायतां परित्रायता कुमारः।

राम —आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

काञ्चुकीयः—महाराजः।

रामः—महाराजः इति। आर्या ! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति। अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः।

काञ्चुकीयः—स्वजनात्।

रामः—स्वजनादिति। हन्त ! नास्ति प्रतीकारः।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा। कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ॥ (१२)

काञ्चुकीय.—तत्रभवत्या कैकेय्याः।

रामः - किमम्बाया ? तेन हि उदर्कोण गुणेनात्र भवितव्यम्।

काञ्चुकीय.—कथमिव ?

रामः—श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥ (१३)

काञ्चुकीयः—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्। तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः।

राम —आर्य ! गुणा खल्वत्र।

काञ्चुकीय.—कथमिव ?

रामः—श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव तावन्मम
पितृपरवत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजानामथ च न
परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ (१४)

काञ्चुकीय.—अथ च तयानाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम्। अत्राप्यलोभः ?

रामः—आर्य ! (भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते) कुतः,

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ (१५)

काञ्चकीय—अथ ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि । महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम् ।

काञ्चुकीयः—ततस्दानीम्,
शोकादवचनाद् राजा हस्तेनैव विसर्जित ।
किमप्यभिमतं मन्ये मोहनृपतिर्गत च ॥ (१६)

राम—कथं मोहमुपगतः ?

शब्दार्थ— परित्रायताम् रक्षा की जाए । परित्रातव्यः=रक्षणीय । दोषः अवगुण अर्थात् आपत्ति । प्रतीकारः=दूर करने का उपाय । उदर्कण =उत्तर फल अर्थात् परिणाम । शक्रसमः=इन्द्र के तुल्य । स्पृहा=इच्छा । अकार्यम=भर्तृ व्यसन रूप बुरा कार्य । उपहतासु=नष्ट हुई अर्थात् कुटिल बनी । आर्जवम्=सरलता को । उपनिक्षेप्तुम्=आरोपित करने के लिए । निवृत्तः=रुक गया है । पितृपरवत्ता=पिता का नियन्त्रण । नवनृपतिविमर्शे= नये राजा के विचार में । शङ्का=विचिकित्सा या सशय । परिभोगैः=राजसुख की आनन्द प्राप्ति मे । अनाहूतोपगतया = बिना बुलाए पहुँचने वाली । अर्थम्=वस्तुतत्व को । अवेक्षते=देखते हैं । शुल्के=विवाह के मूल्य मे । विपणितम्=विशेष सम्भावित । पुत्रार्थे=पुत्र के निमित्त । याच्यते=मागा जाता है । परिवादं=निन्दा को । अभिधीयताम्=कहा जाए । अवचनात् =बिना कुछ कहे । विसर्जितः=भेज दिया । अभिमतं=चाहा गया । मन्ये=मै समझता हूँ । मोह=संज्ञाहीनता को ।

अन्वय—परिः शरीरे प्रहरति तथा स्वजनः हृदये । कस्य स्वजन शब्दः मे लज्जाम् उत्पादयिष्यति । (१२)

अन्वय—यस्याः शक्रसमः भर्ता । या च मया पुत्रवती । तस्याः कस्मिन् फले स्पृहा । येन अकार्यम् करिष्यति । (१३)

अन्वय—तावत् पार्थिवस्य एव वनगमननिवृत्तिः । मम पितृपरवत्ता । स एव बालभावः । नवनृपतिविमर्शे प्रजाना शका न अस्ति । अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः । (१४)

अन्वय—यदि शुल्के पुत्रार्थे विपणितं राज्य याच्यते, अत्र तस्याः लोभः । भ्रातृराज्यापहारिणाम् अस्माकम् न । (१५)

अन्वय—राजा शोकात् अवचनात् हस्तेन एव विसर्जितः । नृपतिः किमपि अभिमतम् मोहम् च गतः मन्ये । (१६)

ी अर्थ

/ महाराज (प्रवेश करके)

ञ्चुकीय—कुमार, रक्षा करें, रक्षा करें।

राम—आर्य, किसकी रक्षा ?

ञ्चुकीय—महाराज की।

म – क्या महाराज की ? तब तो यों कहिए कि एक ही शरीर में बंधी हुई पृथ्वी की रक्षा की जाए। किन्तु यह आपत्ति आई कहां से ?

ाञ्चुकीय—अपने ही परिवार के व्यक्ति से।

ाम—क्या आत्मीय जन से ? तब तो इसे दूर करने का उपाय नहीं है। शत्रु तो केवल शरीर पर आक्रमण करता है, किन्तु आत्मीय जन मर्म स्थान पर आघात करते हैं। न जाने इस विपत्ति में कौन स्वजन निमित्त बना है, जो मेरे लिए लज्जा उत्पन्न करेगा। (१२)

काञ्चुकीय—महारानी कैकेयी।

राम—क्या मेरी जननी ? तब तो अवश्य ही इसका परिणाम अच्छा होगा।

काञ्चुकीय—किस प्रकार ?

राम—सुनिए,

जिसके पतिदेव इन्द्र के समान हों और जिसका मैं पुत्र होऊं। भला उसे क्या कामना हो सकती है ? जिसके लिए वे ऐसा बुरा कार्य करेगी।

काञ्चुकीय हे राजकुमार: स्वभावतः मारी गई नारी बुद्धि पर अपने सीधेपन का आरोप मत करो। उसी के कहने से तो आपका अभिषेक रुक गया है।

राम – आर्य, इसमें तो बहुत सी अच्छाइयां हैं।

काञ्चुकीय—वे किस प्रकार हैं ?

राम – सुनिए, सर्वप्रथम तो महाराज का वन जाना रुक गया। मुझ पर पिता की छत्रच्छाया बनी रही, उसी प्रकार का बालभाव अर्थात् पूर्ववत् सुख की स्थिति विद्यमान रही। नया राजा पता नहीं अच्छा होगा या बुरा, यह आशंका भी प्रजागण को नहीं है और मेरे अन्य भाई भी राज्य के उपभोग के आनन्द से वंचित नहीं रहे। (१४)

काञ्चुकीय—किन्तु उस कैकेयी ने बिना बुलाए ही जाकर राजा दशरथ

से कहा कि भरत का राज्य सिंहासन पर अभिषेक कर दो। इसमें लोभ नहीं है ?

राम—आर्य, हमारी ओर अधिक स्नेह होने के कारण ही आप वास्तविक को नहीं देख रहे है। क्योंकि, यदि विवाह के मूल्य मे पुत्र लिए विशेष रूप से सम्भावित राज्य को मांगा जाता है, तो इस उसका लोभ है और भाई के राज्याधिकार को लेने वाले हम लो क्या लोभ रहित है ? (१५)

काञ्चुकीय—किन्तु।

राम—मैं इसके आगे जननी की निन्दा नहीं सुनना चाहता हूँ। त फिर महाराजा के समाचार कहो।

काञ्चुकीय—इसके बाद फिर,
राजा के द्वारा दुःख के कारण बिना कुछ बोले ही मैं हाथ के सकेत आपके पास भेजा गया हूँ। राजा उस स्थिति की अपेक्षा कु अधिक अच्छी लगने वाली मूर्च्छा को प्राप्त हो गए, ऐसा मेरा विचा है। (१६)

(८) मूल

(नेपथ्ये)
कथं कथ मोहमुपगत इति ?
यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया

रामः—(आकर्ण्य पुरतो विलोक्य)
अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैसार्यगरः।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रत. ॥ (१७)
(ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः)

लक्ष्मण.—(सक्रोधम्) कथ कथं मोहमुपगत इति।
यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृत. सर्वोऽप्येव मृदुः परिभूयते।
अथ न रुचित मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहित लोकं कर्तुम् यतश्छलित वयम् ॥ (१८)

सीता—आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम्। अपूर्व खल्वस्यायास.।

रामः—सुमित्रामातः ! किमिदम्।

लक्ष्मण:—कथं कथं किमिद नाम ?

क्रमप्राप्ने हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ॥ (१९)

राम:—सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवतः उद्योगं जनयति ।
आः, अपण्डितः खलु भवान ।
भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥ (२०)

लक्ष्मण:—न शक्नोमि रोष धारयितुम् । भवतु भवतु । गच्छाम-स्तावत् । (प्रस्थितः)

राम:—त्रैलोक्य दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता ।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ॥ (२१)
सुमित्रामातः ! इतस्तावत् ।

शब्दार्थ—सहसे = सहन करते हो । अक्षोभ्यः = शान्त । क्षोभितः = चंचल बना दिया गया । रुष्टेन = कुपित बने हुए । शताकीर्णाम् = सैकडों लोगो से घने बने हुए । स्वजननिभृत = आत्मीयों पर क्षमाशील । मृदुः = शान्त । परिभूयते = अपमानित होता है । यतः = जिस कारण से । अपूर्व = अनोखा । आयास = खेद । सुमित्रामात = सुमित्रा माता य य स = सुमित्रा जिसकी जननी है, वह अर्थात् सुमित्रा का पुत्र = लक्ष्मण । शोच्यासने = दु ख-पूर्ण आसन या स्थिति वाले । निर्मनस्विता = आत्माभिमान शून्याता अस्मद्राज्यभ्रंशः = हमारा राज्य से च्युत् होना । भवतः = आपके । उद्योगं = परिश्रम को । जनयति = प्रेरित करती है । अपण्डित. = विवेकहीन । धनुः-श्लाघा = धनुर्विद्या में प्रवीणता । रोष = क्रोध को । दग्धुकामा = जलाने की इच्छा वाले । ललाटपुटसंस्थिता = भालपर विधमान । भ्रुकुटिः = भौंह । नियती = भाग्य की इच्छा । व्यवस्थिता=स्थिर निश्चय वाली ।

अन्वय- अक्षोभ्यः धैर्यसागरः लक्ष्मणः केन क्षोभितः ? रुष्टेन येन अग्रतः शताकीर्णाम् इव पश्यामि । (१७)

अन्वय—यदि राज्ञ मोहं न सहसे, धनुः स्पृश, दया मा । स्वजननिभृतः मृदुः सर्व. एवं परिभूयते । अथ न रुचित, त्वं मां मुञ्च । अहं लोक युवति-रहितं कर्तुम् कृतनिश्चयः । यतः वयं छलिताः । (१८)

रामः—वने खलु वस्तव्यम् ।
सीता—तत् खलु मे प्रासादः ।
रामः—श्वश्रूश्वसुरशुश्रूषापि च ते निर्वर्तितव्या ।
सीता—एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते ।
रामः—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।
लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् । कुतः—

(अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा)
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ (२५)
(प्रविश्य)

चेटी—जयतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति-अवदातिकया संगीतशालाया आच्छिद्य वल्कला आनीताः । इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः । निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति ।

रामः—भद्रे, आनय, मन्तुष्टैषा । वयमर्थिनः ।
चेटी—गृह्णातु भर्ता । (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)
(रामो गृहीत्वा परिधत्ते)

शब्दार्थ—स्थैर्यम् = धैर्य को। उत्पादयता = उत्पन्न करने वाले । नमयि = उठाया जाये । अवेक्षमाणे = प्रतीक्षा या पालन करने वाले । मुच्चानि = छोड़ा जाए । मातरि = माता कैकेयी पर । हरन्त्याम् -लेने वाली । दोषेषु बाह्यम् = दोष या अपराध में लिप्त न होने वाले । हन्तानी = मारा जाए । रुचिरं = अच्छा लगने वाला । पातकेषु = महा पापों में । अविज्ञाय = नहीं जान कर । उपालभसे = डाँट रहे हैं । निवेदितम् प्रकट की है । अप्रभुत्वम् = अधीनता को । मङ्गलार्थे = अच्छा कार्य करने के लिए । अनया = इस अवदातिका के द्वारा । नैवाप्तम् = नहीं प्राप्त किया है । नोपपादितम् = नहीं [illegible]या है । व्यवसितम् = सोचा है । श्वश्रू = सास । शुश्रूषा = सेवा । निर्वर्ति- [illegible] = की जानी चाहिए । वार्यताम् = मना करो । उत्सहे = समर्थ हूँ ।

श्लाघनीये = प्रशंसनीय । राहुदोषे = राहु से ग्रस लेने पर । तारा = चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी । याति = चली जाती है । करेणु = हथिनी । पङ्कलग्नम् = कीचड़ मे फँसे हुए । व्रजतु = जाए । चरतु = आचरण करे । भर्तृनाथा = स्वामी के अधीन । आच्छिद्य = छीन कर । अननुभूताः = काम में नही लिए गए । निर्वर्त्यताम् = पूरा कीजिए ।

अन्वय–सत्यम् अवेक्षमाणे ताते धनु नमयि । स्ववर्नं हरन्त्यां मातरि शर मुञ्चानि, दोषेषु वाह्यम् अनुज भरत हनानि, त्रिपु पातकेषु रोषणाय कि रुचिरम् । (२२)

अन्वय—यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे मनोरथ. न । चतुर्दश वर्षाणी त्वया वने वस्तव्यम् किल । (२३)

अन्वय—अनया दत्तान् वल्कलान् तावत् मङ्गलार्थं आनय । अन्यः नृपै नैवाप्त नोपपादितं धर्म करोमि । (२४)

अन्वय– राहुदोषे ऽपि तारा शशाकम् अनुचरति । च वनवृक्षे पतति लता भूमि याति । करेणुः पंकलग्नं गजेन्द्र न त्यजति । व्रजतु धर्मम् चरतु । हि नार्यः भर्तृनाथा । (२५)

हिन्दी अर्थ

लक्ष्मण— आर्य यह आया ।

राम— तुमको शान्त करने के लिए ही मैने ऐसा कहा है । अब तुम ही बताओ ।

अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने वाले पिताजी पर धनुष उठाया जाये । पूर्व प्रतिज्ञात अपने विवाह शुल्क को माँगने वाली, माता पर वाण छोडूँ । अथवा निर्दोष बने हुए छोटे भाई भरत को मारूँ । इन तीनो भयंकर पापो मे से तुम्हारे क्रोध को कौन-सा अच्छा लगता है ? (२२)

लक्ष्मण—(आँसू भर कर) हाय धिक्कार है । हमे विना जाने ही आप उलाहना दे रहे है ।

जिसके कारण महान् दुःख हो रहा है, उस राज्य के प्रति मेरी अभिलाषा नही है । मुझे पीडा यह है कि १४ वर्ष तक आपको वन में रहना पड़ेगा । (२३)

राम—क्या इस पर महाराज बेहोश हो गए । हाय, उन्होने तो अपनी अधीरता दिखा दी । हे सीते,

इस सेविका के द्वारा दिये गए ये वल्कल वस्त्र मुझे शुभ कार्य करने के लिए दो । मैं दूसरे राजाओं द्वारा नही प्राप्त किए गए और न किए गए आचरण को करूँगा । (२४)

सीता--आर्यपुत्र लीजिए ।

राम--हे सीते ! तुमने क्या निश्चय किया है ?

सीता—मैं तो आपकी सहधर्मचारिणी हूँ ।

राम—मुझे तो अकेले को ही जाना है ।

सीता—इसीलिए तो आपके साथ चल रही हूँ ।

राम—वहाँ तो जगल में रहना पड़ेगा ।

सीता—वह मेरे लिए राजमहल होगा ।

राम—तुमको सास-ससुर की सेवा भी तो करनी चाहिए ।

सीता—इसके लिए मैं देवताओं को प्रणाम करती हूँ ।

राम—हे लक्ष्मण, इसे रोको ।

लक्ष्मण—आर्य, ऐसे सम्माननीय अवसर पर इन देवी को नही रोक सकता हूँ क्योकि—

राहु के द्वारा चन्द्रमा के ग्रहण कर लेने पर भी रोहिणी चन्द्रमा के साथ रहती है । वन मे वृक्ष के गिर जाने पर उसके साथ लिपटी हुई लता भी पृथ्वी पर आ जाती हैं । हथिनी कीचड़ मे सने हाथी को नही छोडती है । अत. यह सीता भी वन जाए और अपने धर्म (कर्त्तव्य) का आचरण करे क्योकि स्त्रियो के लिए तो पति ही सर्वस्व होते है । (२५)

(प्रवेश करके)

चेटी—महारानी की जय हो ! सज्जागृह की रक्षिका आर्या रेवा प्रणाम करके सूचित करती है कि अवमातिका सगीतशाला से कुछ वल्कल वस्त्र स्वय ही ले आई है । हो सकता है कि वे अच्छे नही हो । ये दूसरे नये वल्कल है । इनसे आप अपना प्रयोजन पूरा कर लीजिए ।

राम—भद्रे, इधर लाओ । यह तो सतुष्ट है । मुझे आवश्यकता है ।

चेटी—स्वामी ग्रहण करें । (उन्हे देकर निकल जाती है ।)

(राम लेकर पहनते है ।)

(१०) मूल

लक्ष्मण:—प्रसीदत्वार्य: ।

अन्वय—वधूसहायं सौभ्रातृव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ते वनगमनं उत्थाय जीर्णः क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः कान्तारद्विरदः इव उप-
(३०)

अन्वय—चीरमात्रोत्तरीयाणा वनवासिना किं दृश्यम्। राजा अस्मासु
नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ (३१)

अर्थ

ा—आप प्रसन्न होइए। आज तक आप सभी प्रकार के वस्त्र, आभूषण, माला आदि सभी पदार्थों मे से आधा देतेआए है। फिर अकेले ही इस वल्कल को क्यो बांध लिया है। क्या इस वल्कल में आप लोभी बन गए है। (२६)

—हे सीते, इसे रोको।

ा—लक्ष्मण, तुम रुक जाओ।

मण—आर्य, तुम अकेली ही मेरे पूज्य राम के चरणों की सेवा करना चाहती हो। दाहिना पांव तुम्हारा है। मेरा बाया होगा। (२७)

ा—आप पतिदेव दया करे। लक्ष्मण दुःखी हो रहा है।

—हे लक्ष्मण, सुनो। यह वल्कल–तपस्या रूपी युद्ध में कवच के समान, संयम रूपी हाथी को वश करने में अंकुश, इन्द्रिय रूपी घोडो के लिए लगाम तथा धर्म रूपी रथ का सारथी है, अतः तुम इनको ग्रहण करो। (२८)

क्ष्मण—कृतकृत्य । (ले

—इस समाचार मार्ग पर एकत्रित हो
है। इन्हे

चीरमात्रोत्तरीयाणा कि दृश्यं वनवासिनाम् ।

राम:—

गतेष्वस्मासु राजा न. शिर:स्थानानि पश्यतु ॥ (३१)

(इति निष्क्रान्ता: सर्वे)

प्रथमोऽङ्क: ।

शब्दार्थ—निर्योगात् = वस्त्र, कचुक आदि पहनने के उपयोगी वस्त्र से । सर्वेभ्य: = सभी भोग्य वस्तुओ से । चीरं = वल्कल । मत्सरी = लोभ की प्रवृत्ति । गुरो: = बडे भाई राम की । दक्षिण: = दाहिना । सव्य: = बायां । दयतां = दया कीजिए । सतप्यते = व्यथित हो रहा है । सौमित्रि: = लक्ष्मण । नियमद्विरदाकुश: = व्रत रूपी हाथी के वशीकरण का साधन । खलीनम् = लगाम (खे अश्वमुखच्छिद्रे लीनम् इति) । धर्मसारथि: = धर्म रूपी रथ का चालक । परिवत्ते = पहनता है । सन्निरुद्ध: = परिपूर्ण । राजमार्ग: = सडक । उत्सार्यताम् = हटाया जाए । यास्यामि = चलूंगा । अपनीयताम् = हटा दो । अवगुण्ठनम् = घूघट । स्वैरं = यथेच्छ रूप में । कलत्रम् - स्त्री को अर्थात् सीता को । वाष्पाकुलाक्षै: = आंसू भरे नेत्रों वाले । वदनै: = मुख से । भवन्त: = आप लोग । निर्दोषदृश्या: = दोपरहितदर्शनीय । व्यसने = आपत्ति-काल मे । वधूसहाये = सीता के साथ । सौभ्रात्र्यव्यवसित = भाई के स्नेह से निश्चित मन वाले । लक्ष्मणानुयात्रम् लक्ष्मण के अनुगमन को । रेणुरूषिताङ्ग: = धूल से सने शरीर वाले । कान्तारद्विरद = जगली हाथी । उपयाति आ रहे है । जीर्ण: = वृद्ध । चीरमात्रोत्तरीयाणां = वल्कल रूपी रेशमी वस्त्र ले । किं दृश्यम् = क्या देखना । शिर.स्थानानि = प्रधान निवास स्थानों को ।

अन्वय—निर्योगात् भूषणात् माल्यात् सर्वेभ्य' मे अर्धम् प्रदाय एकाचीरम् बद्धम् । खलु चीरे मत्सरी असि । (२६)

अन्वय—त्वम् एका गुरो: पादशुश्रूषां कर्तुम् इच्छसि । दक्षिण: तव एव । मम सव्य : भविष्यति । (२७)

अन्वय—तप.संग्रामकवचम् नियमद्विरदाङ्कुश: इन्द्रियाश्वानाम् खली-धर्मसारथि: गृह्यताम् । (२८)

अन्वय—वाष्पाकुलाक्षै: वदनै: भवन्त: एतत् कलत्रम् स्वैरम् हि पश्यन्तु । नार्य : यज्ञे विवाहे व्यसने वने च निर्दोषदृश्या : हि भवन्ति । (२९)

अन्वय—वधूसहायं सौभ्रातृव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ते वनगमनं वा उत्थाय जीर्णः क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः कान्तारद्विरदः इव उपते। (३०)

अन्वय—चीरमात्रोत्तरीयाणां वनवासिनां किं दृश्यम्। राजा अस्मासु ाषु नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ (३१)

ान्दी अर्थ

क्ष्मण—आप प्रसन्न होइए। आज तक आप सभी प्रकार के वस्त्र, आभूषण, माला आदि सभी पदार्थों मे से आधा देतेआए है। फिर अकेले ही इस वल्कल को क्यो बाध लिया है। क्या इस वल्कल में आप लोभी बन गए है। (२६)

ाम—हे सीते, इसे रोको।

सीता—लक्ष्मण, तुम रुक जाओ।

लक्ष्मण—आर्य, तुम अकेली ही मेरे पूज्य राम के चरणों की सेवा करना चाहती हो। दाहिना पांव तुम्हारा है। मेरा बायां होगा। (२७)

सीता—आप पतिदेव दया करें। लक्ष्मण दुःखी हो रहा है।

राम—हे लक्ष्मण, सुनो। यह वल्कल–तपस्या रूपी युद्ध में कवच के समान, संयम रूपी हाथी को वश करने में अंकुश, इन्द्रिय रूपी घोड़ो के लिए लगाम तथा धर्म रूपी रथ का सारथी है, अतः तुम इनको ग्रहण करो। (२८)

लक्ष्मण—कृतकृत्य हो गया हूं। (लेकर पहनता है)

राम—इस समाचार को सुन कर पुरवासी लोग राजमार्ग पर एकत्रित हो गए है। इन्हे समझाकर हटा दीजिए।

लक्ष्मण—आर्य, मैं आगे चलता हूँ। हट जाइए, हट जाइए।

राम—सीते, अपना घूंघट हटा दो।

सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा। (घूंघट हटाती है)

राम—हे हे पुरवासियो, आप लोग सुनिए, सुनिए। आप लोग निःशंक होकर अश्रुपूर्ण नेत्रो से सीता को देख ले। यज्ञ, विवाह, सकट और वन गमन के अवसर पर स्त्रियो को देखना निर्दोष है। (२९)

(प्रवेश करके)

काञ्चुकीय—हे कुमार, मत जाइए। ये महाराज दशरथ-सीता के सं आपका वनगमन तथा भ्रातृस्नेह के वशीभूत लक्ष्मण का अनुगमन न कर, वृद्ध महाराज उठ कर पृथ्वी की धूलि से धूसरित शरीर वा वन्य गजराज की भाँति काँपती चाल से आप लोगों को देखने के लि इधर ही आ रहे हैं। (३०)

लक्ष्मण—आर्य,

वस्त्र के रूप में केवल वल्कल मात्र को पहने हुए हम वन वासियों को देखकर क्या करेंगे ?

राम—हमारे चले जाने पर महाराज हमारे प्रधान निवास स्थानों को देखा करेंगे।

(इस प्रकार सब निकल जाते हैं)

प्रथम अंक समाप्त।

द्वितीय अंक

(१) मूल

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

हुए हम काञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

स्थानों को। (प्रविश्य)

प्रतीहारी—आर्य ! किमेतत् ?

काञ्चुकीयः—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तमुपावर्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय, उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥ (१)

प्रतीहारी—हा हा एवंगतो महाराजः ।

काञ्चुकीय.—भवति ! गच्छ ।

प्रतीहारी—आर्य ! तथा । (निष्क्रान्ता)

काञ्चुकीय.—(सर्वतो विलोक्य) अहो नु खलु रामनिर्गमन दिनादारभ्य शून्यैवेयमयोध्या संलक्ष्यते । कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
हेषाशून्यमुख. सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः—सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥ (२)

यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अये ! अयं महाराजो महादेव्या सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरहसमुद्भव शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्ती-

श्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति । कष्टा खल्ववस्था वर्तते । एष एव महाराजः–

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन्मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥ (३)
(निष्क्रान्तः)
मिश्रविष्कम्भकः ।

शब्दार्थ—प्रतिहारव्यापृताः = द्वार पर नियुक्त पुरुष । अप्रमत्ताः = सावधान । सत्यवचनरक्षणपरः = सत्य वाणी के पालन मे तत्पर । उपावर्तयितुम् = वापस लौटाने के लिए । अशक्तः - असमर्थ । प्रलपन् = निरर्थक बोलते हुए । समुद्रगृहके = समुद्रगृह नामक भवन में । मेरु. = सुमेरु पर्वत । चलन् = कपायमान । युगक्षय–सन्निकर्षे = युगान्त के समीप आने पर । शोष व्रजन् = सूखते हुए । महोदधि. = समुद्र । अप्रमेय. = जिसका निर्धारण नहीं किया जा सके । पतन् = गिरता हुआ । मण्डलमात्रलक्ष्य. = बिम्ब मात्र के समान दिखने वाला । भृश = बहुत अधिक । शिथिलदेहमति. = सुन्न शरीर और बुद्धि वाले । यवस = कोमल घास । सास्रेक्षणा = अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले । वाजिनः = घोड़े । हेषाशून्यमुखाः=शब्द रहित मुख वाले । त्यक्ताहारकथा = भोजन और बोलना छोड़ने वाले । सुदीनवदनाः = अत्यन्त मलिन मुख वाले । क्रन्दन्तः – रोते हुए । उच्चैः = जोर से । याति=गये है । सदारसहज' = स्त्री और भाई के साथ । अमी = ये । महादेव्या = कौसल्या के द्वारा । निगृह्य= रोक कर । सस्थापयन्तीभ्याम् = धैर्य बँधाती हुई । अन्वास्यमान' = सेवा किए जाते हुए । कष्टा=दुःखपूर्ण । उत्थाय=उठ कर । लपन् बोलते हुए । मुहुः = बार-बार । यया = जिस दिशा से । यातः = गए हैं । रघुद्वह' = रघुवश मे श्रेष्ठ अर्थात् राम । मिश्रविष्कम्भकः = नाटक मे प्राप्त होने वाला एक विशेष पारिभाषिक शब्द, जिसमें बीती हुई और आगे होने वाली घटनाओं की सूचना रहती है ।

अन्वय-युगक्षयसन्निकर्षे चलन् मेरुः इव, शोषं व्रजन् अप्रमेयः महोदधिः इव, पतन् मण्डलमात्रलक्ष्य. सूर्यः इव, नरेन्द्रः शोकात् भृश शिथिलदेहमतिः ।(१)

अन्वय—अमी यवसाभिलाषविमुखाः नागेन्द्राः, सास्रेक्षणा. हेषाशून्यमुखा. वाजिनः, त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदना. उच्चै. क्रन्दन्त.सवृद्धवनितावालाः पौरा. जनः च यया दिशा सदारसहजः रामः याति, ताम् इव पश्यन्ति । (२)

अन्वय—उत्थाय च उत्थाय हा हा इति मुहुः उच्चैः लपन् पतति।
यया रघूद्वह. यात. ताम् एव दिशं पश्यति। (३)

हिन्दी अर्थ

(इसके वाद काञ्चुकीय आता है)

काञ्चुकीय—हे द्वारपालो, आप अपने स्थानों पर सावधान रहें।

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य, यह क्या है?

काञ्चुकीय—ये प्रतिज्ञापालक महाराज दशरथ राम को वन जाने से लौटा न सके और अब पुत्रवियोग के दुःख की ज्वाला से सन्तप्त हृदय होकर पागलो के समान प्रलाप करते हुए समुद्रगृह मडल मे लेटे है, जो—प्रलय के समीप आने पर डगमगाते हुए सुमेरु के समान, सूखते हुए सागर के समान, गिरते हुए व मण्डल मात्र दीखने वाले सूर्य के समान अपार शोक सागर मे निमग्न दुर्बलकाय व हीन चेतना वाले होते जा रहे है। (१)

प्रतीहारी—हाय, क्या महाराज ऐसे हो गए हैं।

काञ्चुकीय—देवी, जाओ।

प्रतीहारी—आर्य, ठीक हैं। (निकल जाती है)

काञ्चुकीय—(चारो ओर देख कर) अहो, जिस दिन से राम वन में गए है, यह अयोध्या सूनी सी दीख रही है। क्योकि—

गजराजो ने चारा खाना छोड दिया है। आंसुओं से भरी आँखों वाले घोडो ने हिनहिनाना वन्द कर दिया है। वृद्ध, स्त्रियाँ, बालक और युवक सभी नगरवासियो ने भोजन की बात भुला दी है तथा जोर-जोर से रोने के कारण उनके चेहरे उतर गए है। ये सब उसी दिशा की ओर देखते रहते है, जिधर राम, लक्ष्मण और सीता गये हैं। (२)

जितने मैं भी महाराज के पास चलूँ। (घूम कर और देख कर) अरे, ये महाराज वैठे है। कौसल्या तथा सुमित्रा अत्यन्त असहनीय पुत्र वियोग को भी किसी भांति सह कर महाराज को आश्वासन देती हुई उनकी सेवा में लगी हैं - सचमुच मे बड़ी दु.खपूर्ण स्थिति है। और ये महाराज—

वार-वार उठ कर गिरते हैं, हाय हाय की रट लगाए जोर से विल करते हैं, फिर लड़खड़ाते है तथा उसी ओर एकटक निहार रहे जिधर से कि रघुश्रेष्ठ राम वन का गए है। (३)

(निकल जाता है)

मिश्रविष्कम्भक

(२) मूल

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा देव्यौ च)

राजा—हा वत्स ! राम ! जगता नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र ! ।
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं वत मे तनूजाः ॥ (४)

चित्रमिदं भोः, यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि तावल्लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि। वधु ! वैदेहि !
रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हित. ।
अयशोभाजन लोके परित्यक्तस्त्वयाप्यहम् ॥ (५)

पुत्र राम ! वत्स लक्ष्मण ! वधु वैदेहि ! प्रयच्छत मे प्रतिवचनम् : न। पुत्रकाः ! शून्यमिद भो : ! न मे कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति। कौसल्यामातः ! क्वासि ?

सत्यसन्ध ! जितक्रोध ! विमत्सर ! जगत्प्रिय ! ।
गुरुशुश्रूपणे युक्त ! प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥ (६)

हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो राम. ? क्वासौ मयि गुर्वनुवृत्तिः ? क्वासौ शोकार्तेष्वनुकम्पा ? क्वासौ तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः ? पुत्र ! राम ! वृद्धं पितर मा परित्यज्य किमसम्बद्धेन धर्मेण ते कृत्यम् ? हा धिक्। कष्ट भोः !

सूर्य इव गतो रामः सूर्यम् दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ (७)

(ऊर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक !
अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
वने व्याघ्रीच कैकेयी त्वया किं न कृत त्रयम् ॥ (८)

ल्या—(सरुदितम्) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशामात्मानं कर्तुम्। ननु सा तौ च कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति।

ाजा—कौ त्व भोः !

ौसल्या—अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम्।

ाजा—कि कि सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौसल्या ?

कौसल्या—महाराज सैव मन्दभागिनी खल्वहम्।

राजा—कौसल्ये ! सारवती खल्वसि। त्वया हि खलु रामो गर्भे धृत.।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम्।
नैव सोढुं न संहर्तुम् शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥ (९)

(सुमित्रां विलोक्य) इयमपरा का ?

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मण-(इत्यर्धोक्ते)

राजा—(सहसोत्थाय) क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः ? न दृश्यते। भोः कष्टम्।

(देव्यौ ससम्भ्रमुत्थाय राजानमवलम्बेते)

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तुं मयोपक्रान्तम्।

राजा—अयि सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥ (१०)

शब्दार्थ—यथानिर्दिष्ट = जैसा कहा गया है। नयनाभिराम = नेत्रों को सुन्दर लगने वाले। सलक्षणसर्वगात्र = अच्छे लक्षणों से युक्त पूरे शरीर वाले। साध्वि हे पतिव्रते। पतिस्थितचित्तवृत्ति = पति मे विद्यमान मन की भावना वाली। बत = हाय। तनूजाः = सन्तान। चित्रम् = आश्चर्यजनक। विमुक्तस्नेहम् = प्रेम को छोड़ने वाले। गर्हितः = निन्दित। अयशोभाजनं = बुराई का पात्र। प्रयच्छत = दो। मे = मुझे। प्रतिवचनम् = उत्तर। कौसल्या-मातः = राम। सत्यसन्ध = अवितथ प्रतिज्ञा वाला। जितक्रोध = कोपावेग को

नियन्त्रण में रखने वाला । विमत्सर = शत्रुता से रहित । गुर्वनुवृत्तिः = महान् अनुगति अर्थात् आज्ञापालन का भाव । शोकार्तेषु = पीडितों पर । अनुकम्पा = दया । तृणवदगणितरा-ज्यैश्वर्यः = राज्यवैभव को तिनके के समान समझने वाले । असम्बद्धेन = सम्बन्धरहित । कृत्यम् = आचरण । कृतान्तहतक = दुष्ट यमराज । अनपत्या = सन्तानहीन । परवशं = पराधीन । प्रेक्षितव्या = देखने योग्य । अस्निग्ध-पुत्रप्रसविनी = प्रेमहीन पुत्र को पैदा करने वाली । मन्दभागिनी = अधन्य वनी । सारवती = प्रशस्त वस्तु वाली । ज्वलनोपमम् = अग्नि के समान । सोढुम् = सहन करने के लिए । संहर्तुम् = विनाश करने के लिए । मुषितेन्द्रियः = ठगी हुई इन्द्रियों वाला । ससम्भ्रमं = सहसा ही । उपक्रान्तम् = प्रारम्भ किया था । नक्तन्दिवं = रात और दिन ।

अन्वय—हा वत्स जगतां नयनाभिराम राम, हा वत्स सलक्षण-सर्वगात्र लक्ष्मण, हा साध्वि पतिस्थित-चित्तवृत्ते मैथिलि, वत मे तनुजा : हा हा किल वनं गताः । (४)

अन्वय—रामेण अपि परित्यक्त : लक्ष्मणेन च गर्हितः, त्वया अपि परित्यक्त : अहं लोके अयशोभाजनम् । (५)

अन्वय—सत्यसन्ध, जितक्रोध, विमत्सर, जगत्प्रिय, गुरुशुश्रूषणे युक्त, मे प्रतिवाक्य प्रयच्छ । (६)

अन्वय—सूर्यः इव रामः गतः, दिवसः इव लक्ष्मणः सूर्यम् अनुगतः । सूर्यदिवसावसाने छाया इव सीता न दृश्यते । (७)

अन्वय—वयम् अनपत्याः, रामः अन्यस्य महीपतेः पुत्रः, कैकेयी वने व्याघ्री च त्वया अय किं न कृतम् । (८)

अन्वय—हि अहं मुषितेन्द्रियः अत्यन्तम् असह्यम् ज्वलनोपमं दुःखं नैव सोढुं नैव संहर्तुम् शक्नोमि । (९)

अन्वय—तव पुत्रः एव सत्पुत्रः, येन वने रघुकुल-श्रेष्ठः रामः नक्तन्दिवं छायया इव अनुगम्यते । (१०)

हिन्दी अर्थ

(ऊपर कहे गए अनुसार राजा और देवियों का प्रवेश)

राजा—हा वत्स संसार के नेत्रों को अच्छे लगने वाले राम, हा, सुलक्षण देह वाले वत्स लक्ष्मण, पतिपरायणा तथा विमल चरित्र वाली सीते, हाय, मेरे प्रिय बच्चे सचमुच वन में चले गए । (४)

ओह, कैसा आश्चर्य है कि लक्ष्मण ने भाई के स्नेह के आगे पिता के स्नेह को तिलांजलि दे दी, फिर भी उसे देखने को मेरा हृदय लालायित हो रहा है। हे वहू सीते, राम ने मुझे छोड दिया, लक्ष्मण ने भी तिरस्कार कर दिया और तुम्हारे द्वारा परित्याग किया गया मै संसार में अपयश का पात्र बना। (५)

हे पुत्र राम, वत्स लक्ष्मण, वहू सोते, मुझे प्रत्युत्तर दो है। पुत्रों यह तो सब कुछ सूना है। अरे, कोई भी मुझे उत्तर नही दे रहा है। हे राम, तुम कहा हो ?

हे सत्यप्रतिज्ञ, जितक्रोध, मात्सर्यशून्य, गुरु की सेवा में निरत, मुझे प्रत्युत्तर तो दो। (६).

हा, वह सभी के हृदय और नेत्रों को सुन्दर लगने वाला राम कहाँ है। उसकी मुझ में गुरुभक्ति कहां है। दुःखी व्यक्तियों पर दया दिखाने वाला कहां है। राज्य भोग को तिनके के समान समझने वाला कहा है। हे पुत्र राम, मुझ वृद्ध पिता को छोड़ कर इस असम्बद्ध धर्म से तुझे क्या लेना-देना। हाय, धिक्कार है । कैसा भयकर दुःख है।

सूर्य के समान राम चला गया। सूर्य के पीछे दिन की भांति लक्ष्मण भी गया। सूर्य और दिन के चले जाने पर छाया की तरह सीता भी नही दिख रही है। (७)

(ऊपर की ओर देख कर) अरे दुर्दैव,

मुझे निस्सन्तान, राम को किसी दूसरे राजा का पुत्र और कैकेयी को वन में सिंहनी वनाना चाहिए था। फिर तुमने ये तीनो कार्य क्यों नही किए। (८)

कौसल्या—(रोती हुई), महाराज, अब आप अधिक दुःख न करें तथा विलाप करके अपना धैर्य न खोयें। चौदह वर्ष के व्यतीत होने पर आप सीता और उन दोनों राजकुमारों को अवश्य देखेंगे।

राजा—अरे, तुम कौन हो ?

कौसल्या—मैं उस अप्रिय पुत्र की जननी हूं।

राजा—क्या तुम उस राम की मां कौसल्या हो, जो सभी के हृदय और नेत्रों के लिए सुन्दर है ?

कौसल्या—महाराज, मैं वही अभागिनी हूं।

राजा—अरी कौसल्या, तुम तो धन्य हो। तुमने ही तो राम को गर्भ मे धारण किया है।

मैं तो नष्ट इन्द्रियों वाला, अत्यन्त असह्य और अग्नि तुल्य इस दुःख को न तो सह सकता हूं तथा न ही दूर करने में समर्थ हूं। (९)

(सुमित्रा को देख कर) यह दूसरी कौन है ?

कौसल्या—महाराज, पुत्र लक्ष्मण—(यों आधा कहने पर)

राजा—(अचानक उठ कर) वह लक्ष्मण कहां है, कहां है ? नहीं दीख रहा है। हाय, बड़ा दुःख है।

(दोनों रानिया घबराहट मे उठ कर राजा को सहारा देती है)

कौसल्या—महाराज, मैं तो यह कह रही थी कि यह पुत्र लक्ष्मण की जननी सुमित्रा है।

राजा— अरी सुमित्रा,

तेरा ही पुत्र सत्पुत्र है, जो रात दिन छाया की तरह वन मे रघुकुल श्रेष्ठ राम के पीछे-पीछे चलता है। (१०)

(३) मूल

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः जयतु महाराजः। एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः।

राजा--(सहसोत्थाय सहर्षम्) अपि रामेण ?

काञ्चकीयः—न खलु, रथेन।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन। (इति मूर्च्छितः पतति)

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। (गात्राणि परामृशतः)

काञ्चुकीयः—भोः ! कष्टम्। ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति (विधिरनतिक्रमणीयः) महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य) वालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ?

काञ्चुकीयः— महाराज ! अथ किम्।

राजा—कष्टं भोः !

शून्य. प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥ (११)
तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीय.—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

राजा—धन्या खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः ।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥ (१२)
(ततः प्रविशति सुमन्त्रः)

सुमन्त्र—(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा
स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलाक्षाः ।
चिन्तादीनाः शोकसन्तप्तदेहा
विक्रोशन्त पार्थिवं गर्हयन्ति ॥ (१३)

(उपेत्य) जयतु महाराजः ।

राजा—भ्रातः सुमन्त्र !

क्व मे ज्येष्ठो रामः–
न हि न हि युक्तमभिहितं मया ।
क्व ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुत ! सुतः सा क्व दुहिता
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिगुरुजने ।
क्व वा सौमित्रिर्माम् हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याह किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥ (१४)

सुमन्त्र—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः । अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि ।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया । नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः । तत् कथ्यताम् । अपि तपस्विनां तपो वर्धते ? अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ?

सुमित्रा—सुमन्त्र ! वहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बालाप्यबालचरित्रा भर्तुः सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ।

शब्दार्थ—तत्रभवान् = श्रीमान् । समाश्वसिहि = धीरज रखिए । परामृशतः = सहलाती है । ईदृग्विधाः = इस प्रकार के । पुरुष विशेषाः = लोकोत्तर पुरुष । ईदृशीमापद = ऐसे दुःख को । विधिः = भवितव्यता । अनतिक्रमणीय = अनुल्लघनीय । वालाके = हे वालाकि (यह कचुकी का नाम है) । शून्यं = सूना । भग्नः - टूट जाना । नेतु = ले जाने के लिए । कालेन = यमराज के द्वारा । प्रेपित = भेजा गया । वाताः = हवाएँ । तटाकपरिवर्तिन. = तालावों पर चलने वाली । हित्वा = छोड़ कर । जातवाष्पाकुलाक्षाः = आंसुओ से व्याकुल नेत्रो वाले । चिन्तादीनाः = चिन्ता से आर्त वने हुए । शोकसन्तप्तदेहा. = दु ख से पीड़ित शरीर वाले । विक्रोशन्तम् = विलाप करते हुए । गर्हयन्ति = निन्दा कर रहे है । दुहिता = पुत्री । हतपितृकम् अभागे पिता को । आसन्नमरण=जिसकी मृत्यु पास मे है । सकलजनशोकार्णवकरम् = पूरे लोक के लिए दु ख रूपी सागर के उत्पादक । भाषिष्ठाः = कहे । द्रक्ष्यसि = देखेगे । अयुक्त = अनुचित । अपि = क्या । परिखिद्यते = दु खी होती है । अवालचरित्रा=प्रौढ आचरण वाली । सहधर्मचारिणी = पत्नी । आलपति = कहती है ।

अन्वय—यदि रथः शून्य प्राप्तः, मम मनोरथः भग्नः । नूनं दशरथं नेतु कालेन रथ प्रेपित. । (११)

अन्वय—वने तटाकपरिवर्तिनः वाताः धन्याः खलु ये वनं विचरन्तं राम यथासुख स्पृशन्ति । (१२)

अन्वय—एते भृत्याः रामे स्नेहात् जातवाष्पाकुलाक्षाः चिन्तादीनाः शोकसन्तप्तदेहा. स्वानि कर्माणि हित्वा विक्रोशन्तं पार्थिव गर्हयन्ति । (१३)

अन्वय—प्रियसुत ! ते ज्येष्ठ सुतः राम. क्व ? सा गुरुजने निरतिशयभक्तिः विदेहानां भर्तुः दुहिता क्व ? सौमित्रि. वा क्व ? किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् आसन्नमरण हतपितृकं मा किमपि आहुः । (१४)

हिन्दी अर्थ

(प्रवेश करके)

काञ्चुकीय महाराज की जय हो । ये श्रीमान् सुमन्त्र आए हैं ।

राजा—(अचानक उठ कर, प्रसन्नतापूर्वक) क्या राम के साथ ?

काञ्चुकीय—नहीं, रथ के साथ ।

राजा—क्या ? केवल मात्र रथ के साथ। (बेहोश होकर गिर जाते हैं)

देवियाँ—महाराज, धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए। (अंगों का स्पर्श करती है)

काञ्चुकीय—अरे, बड़ा दुःख है। इस प्रकार के महापुरुष भी जब ऐसी आपत्ति को प्राप्त करते है, तो यह सच है कि होनी किसी से नही टाली जा सकती। महाराज, धीरज रखिए, धीरज रखिए।

राजा—(कुछ संभल कर) हे बालाकि, सुमन्त्र क्या अकेले ही आए हैं ?

काञ्चुकीय—महाराज, और क्या।

राजा—अरे, बडा दुःख है।

यदि रथ सूना ही आया है, तो मेरे हृदय की इच्छा तो टूट गई। ऐसा लगता है कि सचमुच मे दशरथ को ले जाने के लिए ही यम ने रथ भेजा है। (११)

तो उसे जल्दी से बुलाओ।

काञ्चुकीय - जैसी महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

राजा—सरोवरो में चलने वाली वे वन की हवाएं सौभाग्यशालिनी है, जो वन मे विचरण करने वाले राम को आनन्दपूर्वक छू लेती हैं।

(इसके बाद सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—(चारो ओर देख कर, दुःखपूर्वक)

ये सेवक राम मे अनुराग होने के कारण अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले, वेदना से दुःखी बने, कष्ट से तपे अंगो वाले होकर अपने कार्यों का परित्याग कर, रोते हुए राजा को कोस रहे है। (१३)

(पास जाकर) महाराज की जय हो।

राजा—हे भाई सुमन्त्र,

मेरा बडा पुत्र राम कहा है—

नही, नही, मैंने ठीक नही कहा।

हे प्रियसुत सुमन्त्र, तुम्हारा बड़ा लड़का राम कहाँ है ? गुरुजनों पर अत्यधिक श्रद्धा रखने वाली, विदेहराज जनक की पुत्री, वह सीता कहाँ है ? अथवा सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण कहा है ? क्या उन्होने सबके लिए शोकसागर को उपस्थित करने वाले, अब शीघ्र मरने वाले, मुझ अभागे पिता को भी कुछ कहा है। (१४)

सुमन्त्र—महाराज, इस प्रकार के अशुभ वाक्य मत कहिए। आप शीघ्र ही उन्हें देखेंगे।

राजा—सचमुच में मैंने अनुचित कहा है। यह तपस्वियों के योग्य प्रश्न नहीं है। अतः अब बताओ। क्या तपस्वियों का तप तो बढ रहा है। क्या वन मे स्वेच्छा से घूमती हुई सीता दुःखी तो नही है।

सुमित्रा—हे सुमन्त्र, बहुत से वल्कलों से आभूषित शरीर वाली, बाला होकर भी आदर्श आचरण वाली, पति के साथ धार्मिक कृत्य करने वाली सीता ने हमे और महाराज को क्या कुछ नही कहा है।

(४) मूल

सुमन्त्रः—सर्व एव महाराजम्–

राजा—न न। श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयातुरौषधैस्तेषां नामधेयैरेव श्रावय।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः। आयुष्मान् रामः।

राजा—राम इति। अयं रामः। तन्नामश्रवणात् स्पृष्ट इव मे प्रतिभाति। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः।

राजा—अयं लक्ष्मणः। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री।

राजा—इयं वैदेही। रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्ययमक्रमः।

सुमन्त्रः—अथ क: क्रमः?

राजा—रामो वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम्।

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली।
बहुदोषाण्यरण्यानि, सनाथैषा भविष्यति ॥ (१५)

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः। आयुष्मान् रामः।

राजा—अयं रामः।

सुमन्त्रः—आयुष्मती जनकराजपुत्री।

राजा—इयं वैदेही।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः।

राजा—अयं लक्ष्मणः। राम! वैदेहि! लक्ष्मण! परिष्वजध्वं मा पुत्रकाः!

सकृत् स्पृशामि वा रामं, सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥ (१६)

सुमन्त्रः—शृंगवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराज शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

कमप्यर्थम् चिरंध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥ (१७)

राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः ? (इति द्विगुणं मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—(ससम्भ्रमम्) बालाके ! उच्यताममात्येभ्यः—अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति ।

काञ्चुकीयः—तथा । (निष्क्रान्तः)

शब्दार्थ—श्रोत्ररसायनैः = कर्ण प्रिय । हृदयातुरौषधैः = मानसिक व्यथा मे प्रशमन पटु । नामधेयैः = नामो के द्वारा । श्रावय = सुनाओ । आयुष्मान् = दीर्घायु । स्पृष्ट इव = छूने के समान । प्रतिभाति = प्रतीत होता है । अक्रम. = अनुचित क्रम या क्रमभङ्ग । अभिधीयताम् = कहा जाए । बहुदोपाणि = अनेक विघ्नो वाले । अरण्यानि = वन । सनाथा = रक्षकयुक्त । परिष्वजध्वम् = भेंट करो । पुत्रकाः = पुत्रो । सकृत् = एक बार । गतायुः = मरणासन्न बना हुआ । शृंगवेरपुरे = गगा के तटवर्ती स्थान पर । विज्ञापयितुम् =सन्देश देने हेतु । अर्थम् = अभिप्राय को । ध्यात्वा = ध्यान करके । प्रस्फुरिताधराः = फड़कते हुए ओठो वाले । वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् = आँसुओ से रुंधे हुए गले के कारण । अनुक्त्वा = विना बोले हुए । द्विगुण = दुगुने । अप्रतीकारायाम् = ठीक न होने वाली ।

अन्वय—अत्र अपि मैथिली रामलक्ष्मणयोः मध्ये तिष्ठतु । अरण्यानि बहुदोपाणि, एषा सनाथा भविष्यति । (१५)

अन्वय—सकृत् रामं स्पृशामि वा पुनः सकृत् पश्यामि । गतायुः अमृतेन इव जीवामि इति मम मतिः । (१६)

अन्वय—चिर कम् अपि अर्थम् वक्तुं प्रस्फुरिताधराः वाप्पस्तम्भितकण्ठत्वात् अनुक्त्वा एव वनं गताः (१७)

हिन्दी अर्थ

सुमन्त्र—सभी ने ही महाराज को—

राजा—नहीं, नहीं, कानों को आनन्द देने वाले तथा दुःखी हृदय को शान्त करने वाले उनके नाम लेकर ही सन्देश सुनाओ।

सुमन्त्र—जैसी महाराज की आज्ञा। चिरजीवी राम।

राजा—क्या राम। यह राम। इसका नाम सुनने से तो लगता है कि मैंने उसे हृदय से लगा लिया है। इसके बाद।

सुमन्त्र—दीर्घायु लक्ष्मण।

राजा—यह लक्ष्मण। इसके आगे।

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकराजकुमारी सीता।

राजा—यह सीता। राम, लक्ष्मण, सीता यह क्रम ठीक नहीं है।

सुमन्त्र—तो फिर कौन सा क्रम उचित है।

राजा—राम, सीता और लक्ष्मण, यों कहो।

यहाँ नामोच्चारण में भी सीता राम और लक्ष्मण के बीच में रहे। वन में बहुत से भय हुआ करते हैं, अतः इस प्रकार वह सुरक्षित रहेगी। (१५)

सुमन्त्र—जैसी महाराज की आज्ञा। दीर्घायु राम।

राजा—यह राम।

सुमन्त्र—आयुष्मती सीता।

राजा—यह वैदेही।

सुमन्त्र—चिरजीवी लक्ष्मण।

राजा—यह लक्ष्मण। राम, सीते, लक्ष्मण। हे पुत्रो, तुम मेरा आलिङ्गन करो।

मैं एक बार राम से मिलूँगा अथवा फिर एक बार राम को देखूँगा। इस सम्भावना से मैं उसी प्रकार जी रहा हूँ, जैसे मरणासन्न अमृत से।

सुमन्त्र—शृंगवेरपुर में रथ से उतर कर, अयोध्या की ओर मुख किए हुए खड़े होकर, सभी ने महाराज को सिर झुका कर प्रणाम करके कुछ कहना प्रारम्भ किया।

बहुत समय तक न जाने कौन सी बात को सोचते रहे। कुछ कहने के लिए उनके ओठ फड़के। किन्तु आँसुओं से गले के अवरुद्ध हो जाने के कारण वे बिना कुछ कहे हुए ही वन में चले गए। (१७)

कौश
राजा—क्या बिना कुछ कहे ही वन मे चले गए ? (इस प्रकार कह कर घोर मूर्च्छा मे पड जाते हैं)

सुमन्त्र—(हडबडाहट के साथ) हे बालाकि, मन्त्रियो से कहो कि महाराज की हालत असाध्य हो चुकी है ।

काञ्चुकीय—जो आज्ञा । (निकल जाता है)

५) मूल

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य)

अंगं मे स्पृश कौसल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुपा ।
राम प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥ (१८)
पुत्र ! राम ! यत् खलु मया सन्तत चिन्तितम्—
राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः
कृत्वा, त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम् ।
इत्यादिश्य च ते, तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया
कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥ (१९)
सुमन्त्र ! उच्यता कैकेय्याः—
गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयता पुत्रः पापं सफलमस्त्विति ॥ (२०)

सुमन्त्र.—यदाज्ञापयति महाराजः ।

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्ध—
हृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः । कोऽत्र ?
(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

राजा—आपस्तावत् ।

काञ्चुकीयः- यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । इमा आप. ।

राजा—(आचम्यावलोक्य)
अयममरपते सखा दिलीपो

रघुरयमत्रभवानजः पिता मे ।
किमभिगमनकारण भवद्भिः
सह वसने समयो ममापि तत्र ॥ (२१)

राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! अहमितः पितृणा सकाशं गच्छामि।
हे पितरः ! अयमहमागच्छामि ।
(मूर्च्छया परामृष्टः)
(काञ्चुकीयो यवनिकास्तरणं करोति)

सर्वे—हा हा महाराजः । हा हा महाराजः ।
(निष्क्रान्ता सर्वे)

द्वितीय अ कः ।

शब्दार्थ—निवर्तते = वापस लौटी है । सन्ततं - लगातार । अभिषिच्य = अभिषेक करके । सन्नरपतेः = अच्छे राजा के । कृतार्था = सफल मनोरथ वाली । सहजान् = भाइयों को । समानविभवान् = तुल्य ऐश्वर्य वाले । कुरु = करो । तदन्यथा = उसे विपरीत रूप में । निःशेषम् - सम्पूर्ण को । जीवितैः = प्राणों से । क्षिप्रं = जल्दी से । आनीयता = बुला लो । पापं = बुरा कार्य । अस्तु = होवे । श्रवणसन्दग्धहृदयं = सुनने से पीड़ित हृदय वाले । आश्वसयितु = धैर्य बँधाने के लिए । पितरः = पूर्वज । आप जल (आपः शब्द संस्कृत मे नित्य बहुवचनान्त होता है) । आचम्य - आचमन करके । अमरपतेः सखा = इन्द्र के मित्र । अभिगमनकारण = आने का प्रयोजन । सह वसने = साथ रहने मे । इतः = यहाँ से । सकाश = पास में । परामृष्टः = युक्त होना (आक्रान्त) । यवनिकास्तरण = वस्त्र से ढकना ।

अन्वय— कौसल्ये, मे अग स्पृश, त्वाम् चक्षुषा न पश्यामि । रामं प्रति गता बुद्धिः अद्य अपि न निवर्तते । (१८)

अन्वय—त्वा राज्ये अभिषिच्य, सन्नरपतेः लाभात् प्रजाः कृतार्थाः कृत्वा, त्वत् सहजान् सन्ततम् आत्मनः समानविभवान् कुरु इति च ते आदिश्य इतः तपोवन गन्तव्यम् इति एतया हि कैकेय्या, अहो, तत् निःशेषम् एकक्षणे अन्यथा कृतम् (१९)

अन्वय—रामः गतः प्रिय ते अस्तु, जीवितं अहम् अपि व्यक्तः । पुत्रः अग्रम् आनीयताम् । पापम् सफलम् अस्तु । (२०)

अन्वय—अयम् अमरपतेः सखा दिलीपः, अयं रघुः, अत्रभवान् मे पिता अजः । अभिगमनकारण किम् ? तत्रभवद्भिः सह वसने ममापि समयः । (२१)

हिन्दी अर्थ

तीनो रानियां—महाराज, धीरज रखे, धीरज रखें ।

राजा—(कुछ सभल कर)

कौसल्या, मेरे अगों पर हाथ फेरो । मै तुम्हे नेत्रो से नही देख रहा हूं । राम की ओर गया हुआ मेरा हृदय अभी भी नही लौट रहा है । (१८)

हे पुत्र राम, मै सदा से सोचता आ रहा था कि—

तुम्हे राजगद्दी पर बैठा कर, प्रजा को उत्तम राजा के लाभ से सफल मनोरथ कर, तुम्हे यह कह कर कि अपने भाइयो को सदा अपने समान ऐश्वर्य शाली बनाए रखना, मै छुटकारा प्राप्त कर, इस वृद्धावस्था को तपोवन में बिताऊँगा । किन्तु इन सब बातो को कैकेयी ने एक क्षण में पलट डाला । (१९)

सुमन्त्र, जाओ, कैकेयी से कह दो—

राम वन चले गए । तुम अपना मनोरथ पूर्ण कर लो । मुझे भी मेरे प्राण छोड चले । अब तुम अपने पुत्र को जल्दी से बुलवा लो तुम्हारा पापमय कृत्य सफल हो जाए । (२०)

सुमन्त्र—जैसी महाराज की आज्ञा ।

राजा—(ऊपर की ओर देख कर) अरे, राम के विवरण के सुनने से दुःखी हृदय वाले मुझे धैर्य बँधाने के लिये पितर लोग आ गए है । अरे, यहाँ कौन है ?

(प्रवेश करके)

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो ।

राजा—जरा जल लाओ ।

काञ्चुकीय—जो महाराज की आज्ञा । (निकलकर और प्रवेश करके) महाराज की जय हो । ये जल है ।

राजा—(ग्राचमन करके देखकर)

ये देवराज इन्द्र के मित्र दिलीप है, ये रघु हैं, ये मेरे पूज्य पिता ग्र
है। ग्राप लोगों के यहाँ ग्राने का क्या कारण है ? ग्रब तो मेरे लि
भी ग्रापके साथ रहने का समय ग्रा पहुँचा है।
र म, सीता, लक्ष्मण, मैं ग्रब यहाँ से पितरो के पास जा रहा हूं।
पितरों, यह मैं ग्राया। (संज्ञा हीन हो जाते हैं।)
(काञ्चुकीय पर्दा गिराता है)

सब—हाय, हाय, महाराज। हाय, हाय, महाराज।
(सब निकलते हैं)

दूसरा ग्रंक समाप्त।

———

तृतीय अंक

) मूल

(ततः प्रविशति सुधाकारः)

सुधाकारः—(सम्मार्जनादीनि कृत्वा) भवतु इदानी कृतमत्र कार्यमार्यसम्भकस्याज्ञप्तम् । यावन् मुहूर्तम् स्वप्स्यामि ।

(स्वपिति)

(प्रविश्य)

भटः—(चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अंश्वो दास्याः पुत्र. ! किमिदानी कर्म न करोषि ? (ताडयति)

सुधाकारः—(बुद्ध्वा) ताडय मां ताडय माम् ।

भटः—ताडिते त्वं कि करिष्यसि ।

सुधाकारः—अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति ।

भटः—वाहुसहस्रेण कि कार्यम् ।

सुधाकारः—त्वां हनिष्यामि ।

भटः—एहि दास्याः पुत्र ! मृते मोक्ष्यामि । (पुनरपि ताडयति)

सुधाकारः—(रुदित्वा) शक्यमिदानी भर्तः ! मेऽपराधं ज्ञातुम् ।

भटः—नास्ति किलापराधो नास्ति । ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गम् गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कोसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्तव्यमिति । अत्रेदानी त्वया कि कृतम् ?

सुधाकारः—पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् । सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः । अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि । प्रकीर्णा वालुकाः । अत्रेदानी मया किं न कृतम् ?

भटः—यद्येवं विश्वस्तो गच्छ । यावदहमपि सर्वम् कृतमित्यमात्याय निवेदयामि ।

राजा—(आचमन करके देखकर)

ये देवराज इन्द्र के मित्र दिलीप हैं, ये रघु हैं, ये मेरे पूज्य पिता अ
है। आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है ? अब तो मेरे लि
भी आपके साथ रहने का समय आ पहुँचा है।

राम, सीता, लक्ष्मण, मैं अब यहाँ से पितरों के पास जा रहा हूँ। है
पितरों, यह मैं आया। (संज्ञा हीन हो जाते हैं।)

(काञ्चुकीय पर्दा गिराता है)

सब—हाय, हाय, महाराज। हाय, हाय, महाराज।

(सब निकलते हैं)

दूसरा अंक समाप्त।

पुरोगैः - कौसल्या जिनके आगे चल रही है, ऐसी। अन्तःपुरैः = रानियों के द्वारा। आगन्तवयम् = आना चाहिये। अपनीत = हटाना। कपोतसन्दानकं = कबूतरो के घोसलो को। गर्भगृह = मध्यगृह अर्थात् बीच का भवन। सौधवर्णकदत्त = सुधामय (सफेद) रंग से पोतना। चन्दनापञ्चाङ्गुला = चन्दन से पाँचो अंगुलियो के निशान बनाना। भित्तयः = दीवारे। अवसक्त = संयोजित करना या लगाना। माल्यदामशोभीनि = फूलों की मालाओ से सुशोभित। प्रकीर्णाः = बिखेरी गई। बालुकाः = रेत। विश्वस्तः = पीटने के भय से रहित। प्रवेशकः = यह भी विष्कम्भक के समान ही आगे आने वाली घटनाओ के संक्षिप्त अर्थ का सूचक है। सावेगम् = पीड़ा के साथ। मातुलपरिचयात् = मामा युधाजित के पास रहने के कारण। अविज्ञातवृत्तान्तः = समाचारो को न जानने वाला। अस्मि = हूं। दृढम् = नितान्त। अकल्यशरीरः = रोगग्रस्त शरीर वाले। व्याधिः = रोग। हृदयपरितापः = आधि या मानसिक पीड़ा। आहुः = कहा है। भिषजः = वैद्य। भुङ्क्ते = खाते है। निरशनः = निराहार रहने वाले। दैवम् = कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। स्फुरति = फड़क रहा है। वाहय = चलाओ।

अन्वय—मे पितुः कः व्याधिः, खलु महान् हृदयपरितापः। वैद्याः तम् किम् आहुः, खलु तत्र निपुणाः भिषजः न। किम् आहारम् भुङ्क्ते शयनम् अपि (अनुभवति)। भूमौ निरशनः। किम् आशा स्यात्। दैवम्। हृदयम् स्फुरति, रथम् वाहय। (१)

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद सुधाकार का प्रवेश)

सुधाकार—(झाड़ू लगा कर) अच्छा, इस समय आर्य संभावक द्वारा बताए गए सभी कार्य तो कर लिए। अब थोड़ी देर तक सोलूँ। (सोता है)
(प्रवेश करके)

भट—(चेट के पास जाकर और पीट कर) अरे दासी-पुत्र, अब काम क्यों नहीं करता? (पीटता है)

सुधाकार—(जाग कर) मार लो, मुझे मार लो।

भट—मारने पर तुम क्या करोगे?

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

भरतः—(सावेगम्) सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति ।
तदुच्यताम्—
पितुर्मे को व्याधिः

सूतः—हृदयपरितापः खलु महान्

भरतः—किमाहुस्त वैद्या

सूतः—न खलु भिपजस्तत्र निपुणाः ।

भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

सूतः—भूमौ निरशनः

भरतः—किमाशा स्याद

सूतः—दैव

भरतः—स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥ (१)

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (रथं वाहयति)

शब्दार्थ—सुधाकारः = चूने की कलई आदि से सफेदी करने वाला सम्मार्जनादीनि = स्वच्छता आदि । कृत्वा = करके अर्थात् झाड़ू लगाकर भवतु = ठीक है । कृतम् = कर लिया है । आर्यसम्भपकस्य = पूज्य सम्भषक का (यह काञ्चुकीय का नाम है) । आज्ञप्तम् = आदेश दिया गया । मुहूर्तम् = थोड़े समय के लिए । स्वप्स्यामि = सोऊँगा । भटः = सिपाही । चेटम् उपगम्य = सेवक के पास जाकर । ताडयित्वा = पीट कर । अंधो = अरे । दास्याः पुत्र = दासी के लड़के (यह सभ्य समाज की गाली है, किसी को "दासी का पुत्र" कहना उसे गाली देना है, क्योंकि इससे उसकी माँ का अपमान झलकता है) मृते = मरने पर । मोक्ष्यामि - छोड़ूँगा । शक्यम् - समर्थ हूँ । भर्तः - स्वामि । अपराधं - दोष । सन्दिष्ट. - आज्ञा दिए गए हो । भर्तृदारकस्य = राजकुमार । विभ्रष्ट = हटना । कृत ~ होने वाले । प्रतिमागेह = मृत राजाओं की स्मृति मे जहाँ उनकी प्रतिमाएँ लगाई जाती हैं, उस स्थान को । कौसल्य.

पुरोगै = कौसल्या जिनके आगे चल रही है, ऐसी। अन्तःपुरैः = रानियों के द्वारा। आगन्तवयम् = आना चाहिये। अपनीत = हटाना। कपोतसन्दानकं = कबूतरो के घोंसलो को। गर्भगृह = मध्यगृह अर्थात् बीच का भवन। सोध-वर्णकदत्त = सुधामय (सफेद) रंग से पोतना। चन्दनापञ्चाङ्गुला = चन्दन से पाँचो अंगुलियो के निशान बनाना। भित्तयः = दीवारे। अवसक्त = संयोजित करना या लगाना। माल्यदामशोभीनि = फूलों की मालाओ से सुशोभित। प्रकीर्णाः = बिखेरी गई। बालुका = रेत। विश्वस्तः = पीटने के भय से रहित। प्रवेशकः = यह भी विष्कम्भक के समान ही आगे आने वाली घटनाओं के संक्षिप्त अर्थ का सूचक है। सावेगम् = पीडा के साथ। मातुलपरिचयात् = मामा युधाजित के पास रहने के कारण। अविज्ञातवृत्तान्तः = समाचारो को न जानने वाला। अस्मि = हूं। दृढम् = नितान्त। अकल्यशरीरः = रोगग्रस्त शरीर वाले। व्याधिः = रोग। हृदयपरितापः = आधि या मानसिक पीडा। आहुः = कहा है। भिषजः = वैद्य। भुङ्क्ते = खाते है। निरशनः = निराहार रहने वाले। दैवम् = कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। स्फुरति = फडक रहा है। वाहय = चलाओ।

अन्वय—मे पितुः कः व्याधिः, खलु महान् हृदयपरितापः। वैद्याः तम् किम् आहुः, खलु तत्र निपुणाः भिषजः न। किम् आहारम् भुङ्क्ते शयनम् अपि (अनुभवति)। भूमौ निरशनः। किम् आशा स्यात्। दैवम्। हृदयम् स्फुरति, रथम् वाहय। (१)

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद सुधाकार का प्रवेश)

सुधाकार—(झाड़ू लगा कर) अच्छा, इस समय आर्य संभावक द्वारा बताए गए सभी कार्य तो कर लिए। अब थोड़ी देर तक सोलूँ। (सोता है)
(प्रवेश करके)

भट—(चेट के पास जाकर और पीट कर) अरे दासी-पुत्र, अब काम क्यों नहीं करता? (पीटता है)

सुधाकार—(जाग कर) मार लो, मुझे मार लो।

भट—मारने पर तुम क्या करोगे?

सुधाकार—मुझ अभागे के कार्तवीर्य के समान हजार भुजाएँ नहीं है।
भट हजार भुजाओं के होने पर क्या करते ?
सुधाकार—तुमको समाप्त कर देता।
भट—अरे, दासीपुत्र, अब तो दम निकाल कर ही छोड़ूँगा। (फिर पीटता है
सुधाकार—(रोकर) हे स्वामी, क्या मैं इस समय मेरा दोष जान सकता हू
भट—कुछ दोष नहीं, सचमुच तेरा कुछ दोष नहीं है। मैंने जो कहा था कि राजकुमार राम को राज्य न मिलने से उत्पन्न होने वाले दुःख से मृत्यु को प्राप्त होने वाले राजा दशरथ के प्रतिमा-गृह को देखने आज कौसल्या आदि के साथ समूचा रनिवास यहाँ आ रहा है। तो फिर तूने यहाँ क्या किया है ?
सुधाकार—स्वामी देखिए। गर्भगृह में बनाए गए कबूतरों के घोसलों को हटा दिया है। दीवारें सफेदी से पोत दी हैं और उन पर चन्दन से पचागुलिका के आकार बना दिए गए हैं। दरवाजों को पुष्प-मालाओं से सजा दिया है। चारो ओर रेत बिछा दी गई है। यहाँ अब मैंने क्या नहीं किया ?
भट—यदि ऐसा है तो निश्चिन्त होकर जाओ। मै भी मन्त्री जी को पूरी तैयारी की सूचना दे देता हूं।

(दोनों निकल जाते है)

(प्रवेशक)

(इसके बाद रथ में बैठे भरत और सारथि का प्रवेश)

भरत—(चिन्तापूर्वक) सारथि, बहुत समय तक मामाजी के यहाँ रहने के कारण मुझे घर के कोई समाचार नहीं मिले। मैंने सुना था कि महाराज अधिक रुग्ण है। अतः कहो—मेरे पिताजी को कौन सा रोग है ?
सूत—दारुण मानसिक सन्ताप।
भरत—उनको वैद्यो ने क्या कहा ?
सूत—वहाँ कोई चतुर वैद्य नही, जो बता सके।
भरत—उनके खाने और सोने की क्या व्यवस्था है ?
सूत—पृथ्वी पर बिना भोजन किए रहते हैं।

भरत—क्या उनके जीने की आशा है ?

सूत—भगवान् ही जाने ।

भरत—मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाओ । (१)

सूत—जैसी महाराज की आज्ञा । (रथ चलाता है)

(२) **मूल**

भरतः—(रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः । एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे ।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलय
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ (२)

सूतः—आयुष्मन्, सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।

भरतः—अहो नु खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः । सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित
त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं भाषां च सौमित्रिणा ॥
(३)

सूतः—(आत्मगतम्) भोः ! कष्टम् यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्कं निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः । जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते ।

कुतः,

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ॥ (४)

(प्रविश्य)

भटः—जयतु कुमारः ।

भरतः—भद्र ! किं शत्रुघ्नो मामभिगतः ।

भटः—अभिगतः खलु वर्तते कुमारः । उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः ।

भरतः—किमिति किमिति।

भटः—एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषय.। तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः।

भरतः—बाढमेवनम्। न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। गच्छ त्वम्।

भटः—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तः)

शब्दार्थ—रथवेगं = रथ की गति को। निरूप्य = देख कर। क्षीणविषयाः = अल्पीभूत पदार्थ वाले। उद्वृत्ताम्बुः = उछलते हुए जल वाली। नेमिविवरे = पहिए के घेरे के रन्ध्र में। अरव्यक्तिः = पहिए के नाभि मध्य के अवयव अरों की स्फुट प्रतीति। स्थितम् = गति रहित। जवात् = वेग के कारण। चक्रवलयम् = पहिए का मण्डल। रजः = धूलि। अश्वोद्धूतं = घोड़ों के खुरों से उड़ी हुई। पुरतः = आगे। नानुपतति = पीछे नहीं गिरती है। स्नेहतया = घने और शीतल होने के कारण। अभितः = आगे। त्वरता = शीघ्रता। स्निह्यता = प्रेम प्रदर्शित करते हुए। समुत्थापित. = उठाते हुए। उपगता = पहुँचा हुआ। क्लेदयन्ति = सींच रही हैं। सदृशः = पहले के समान ही। व्यायतः = नियन्त्रित या बलवान्। आत्मनः = स्वयं के। सौमित्रिणा = लक्ष्मण के द्वारा। अविज्ञाय = नहीं जान कर। उदर्के = उत्तर काल में। निष्फलाम् = फलरहित। आशाम् = मनोरथ को। परिवहन् = धारण करते हुए। प्रवेक्ष्यति = प्रवेश करेगा। जानद्भिः = जानते हुए भी। निवेद्यते = कहा जा रहा है। प्राणपरित्यागं = मृत्यु को। ऐश्वर्यलुब्धताम् = धन लोलुपता को। प्रवास = देशान्तरगमन को। दोषान् = दुःखपूर्ण समाचारों को। अभिधास्यति = कहेगा। अभिगतः = आया है। उपाध्यायाः = वसिष्ठ, वामदेव आदि ने। भवन्तम् = आपको। आहुः = कहा है। नाडिका = २४ मिनट का काल या आधे मुहूर्त का समय। कृत्तिकाविषय = कृत्तिका नक्षत्र का समय। प्रतिपन्नायाम् = बीत जाने पर। रोहिण्याम् = रोहिणी नक्षत्र में। बाढम् = हाँ, ठीक है। अतिक्रान्तपूर्वम् = पहले उल्लंघन करना।

अन्वय—द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव। मही उद्वृत्ताम्बुः नदी इव नेमिविवरे निपतति। अरव्यक्तिः नष्टा। चक्रवलयम् जवात् स्थितम् इव। अश्वोद्धूतं रजः च पुरतः पतति न अनुपतति। (२)

अन्वय— पितुः पादयोः शिरः पतितम् इव । स्निह्यता राज्ञा समुत्थापितः इव अस्मि । भ्रातरः त्वरितम् उपगता इव । मातरः अश्रुभिः माम् क्लेदयन्ति इव । सदृशः इति, महान् इति, व्यायतः च इति भृत्यैः सेवया अहम् स्तुतः इव । तत्र आत्मनः वेषं च भाषा च सौमित्रिणा परिहसितम् इव पश्यामि । (३)

अन्वय—पितुः प्राणपरित्यागम्, मातुः ऐश्वर्यलुब्धताम्, ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासम्, त्रीन् दोषान् कः अभिधास्यति । (४)

हिन्दी अर्थ

भरत—(रथ की गति को देख कर) अहा । रथ किस तीव्रता से भागा जा रहा है ।

ये वृक्ष रथ की तेज गति के कारण आँखों से ओझल होते हुए मानो दौड रहे हैं । भँवर से युक्त जल वाली नदी की भाँति पृथ्वी धुरी के छिद्र में मानो गिर रही है । बडी तेजी से घूमने के कारण चक्र के आरे दीख नहीं रहे है । रथ का पहिया वेग से मानो गति हीन हो रहा है और धूलि घोडों के खुरो से उड कर सामने ही गिरती है पीछे नहीं । (२)

सूत—हे दीर्घायु, वृक्षों की सघनता तथा शीतलता से जान पड़ता है कि अयोध्या पास में ही है ।

भरत—अहा, आत्मीय जनों को देखने के लिए मेरा मन कितना उतावला हो रहा है । क्योंकि, इस समय—ऐसा लग रहा है कि पिताजी के चरणों में मेरा सिर झुका हुआ है और उन्होने मुझे प्रेम से उठा सा लिया है । भाई शीघ्रता से आकर मुझे घेर से रहे हैं । जननियाँ आंसुओ से मुझे भिगो सी रही है । भरत पहले के समान ही है, पहले से बड़े हो गए हैं, इस प्रकार कहते हुए सेवक लोग मेरी सेवा करते हुए प्रशंसा कर रहे हैं और लक्ष्मण मेरी निम्न प्रकार की वेशभूषा तथा बोली पर परिहास कर रहा है । (३)

सूत—(मन में) अरे, दुःख की बात है कि यह राजकुमार महाराज की मृत्यु को नहीं जान कर भावी मिथ्या आशा को लिए हुए अयोध्या में प्रवेश

करेगा और मैं जानते हुए भी इसे नही बता पा रहा हूं। क्योंकि, पिता दशरथ की मृत्यु, माता कैकेयी का राज्यलोभ और बड़े भाई राम का वनवास इन तीनो दोषों को कौन कहेगा। (४)

(प्रवेश करके)

भट— राजकुमार की जय हो।

भरत—भद्र, क्या शत्रुघ्न मेरे पास आ रहे हैं।

भट— हां, राजकुमार तो आपके पास आ ही रहे हैं। किन्तु उपाध्यायों ने आपसे कहा है।

भरत— क्या कहा है, क्या कहा है ?

भट— कृत्तिका का एक दण्ड (६० पल या २४ मिनट का काल=नाडी या नाडिका) रह गया है। उसके बीत जाने पर रोहिणी मे कुमार अयोध्या मे प्रवेश करे।

भरत—बहुत अच्छा। मैंने गुरुजनो के वचन पहले कभी नही टाले। तुम चलो।

भट— जैसा राजकुमार आदेश देते हैं। (निकल जाता है)

(३) मूल

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये। भवतु दृष्टम्। एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तम् विश्रमयिष्ये। तदुभयं भविष्यति-दैवतपूजा विश्रमश्च। अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः। तस्मात् स्थाप्यताम् रथः।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं स्थापयति)

भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान्।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (निष्क्रान्तः)

भरतः—(किञ्चिद गत्वावलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता वलयः दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः, अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा वालुकाः। किं नु खलु पार्वणोऽयं विशेषः अथवा आह्निकं मास्तिक्यम् ? कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति। नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं दृश्यते। भवतु प्रविश्य ज्ञास्ये। (प्रविश्यावलोक्य) अहो

धुर्यम् पाषाणानाम् । अहो भावगतिराकृतीनाम् । दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासतासां प्रतिमानाम् । किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः । अथवा यानि तानि भवन्तु । अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः ।

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः ।
वार्षलस्तु प्रणामः स्याद् मन्त्रार्चितदैवतः ॥ (५)
(प्रविश्य)

देवकुलिकः—भोः ! नैत्यकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः ? भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये ।

(प्रविशति)

भरतः—नमोऽस्तु ।

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः ।

भरतः—मा तावद् भो !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टं प्रतिपाल्यते ।
किं कृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥ (६)

देवकुलिकः—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम् । किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः ।

भरतः—एवम् । क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः । अथ के नामात्रभवन्तः ।

देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः ।

भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति । एते ते ऽयोध्याभर्तारः । एते ते दैवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी—
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः ।
एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्ना वसुमती
मेते ते मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥ (७)

भोः ! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

शब्दार्थ—प्रदेशे=स्थान पर। विश्रमिष्ये=आराम करूंगा। वृक्षान्तराविष्कृते=पेडो के मध्य दीखने वाले। देवकुले=मन्दिर मे। मुहूर्तम्=थोडी देर तक। उभय=दोनो। उपोपविश्य = थोडी देर बैठकर। सत्समुदाचारः= शिष्टाचार। स्थाप्यताम् = रोको। विश्रामय=आराम कराओ। साधुमुक्त पुष्पलाजाविष्कृताः=सज्जन व्यक्ति से विकीर्ण किए गए फूल व खीलों से प्रकट होने वाले। बलय.=प्रसाद या नैवेद्य। अवसक्त= लटकने वाली। पार्वणः =पूर्णिमा आदि विशेष तिथि पर होने वाला। आह्निकम्=प्रतिदिन किया जाने वाला। आस्तिक्यम् = ईश्वर भक्त का। दैवतस्य=देवता का। इह-यहा पर। प्रहरणम्=शक्ति आदि आयुध। बहिश्चिह्नं=बाहरी लक्षण। ज्ञास्ये= मालूम करूंगा। क्रियामाधुर्यम्= शिल्प चातुरी। भावगति =भावो की अभिव्यक्ति। दैवतोद्दिष्टानां=देवताओ को प्रतिमा स सकल्पित। मानुषविश्वासतः =मनुष्यो की प्रतिमा की विश्वास योग्यता। चतुर्दैवता=चार देवताओ का। स्तोम.=समूह। वार्षल = शूद्र सम्बन्धी। अमन्त्रार्चितदैवतः-देवता के मन्त्र और पूजा के बिना। देवकुलिक =पुजारी। नैत्यकावसाने=पूजा आदि नित्य कर्म की समाप्ति पर। प्राणिधर्मम्=भोजन को। अनुतिष्ठति=कर लेने पर। अल्पान्तराकृति=बहुत कम भेद वाले आकार का। ज्ञास्ये=ज्ञात करूंगा। नमोऽस्तु = नमस्कार होवे। मा तावद् भोः = ऐसो मत कहो। वक्तव्यम् = दूषण। विशिष्ट.= मुझ से अच्छे व्यक्ति की। प्रतिपाल्यते= प्रतीक्षा की जा रही है। नियमप्रभविष्णुता= स्वय के तपोनुष्ठान की प्रौढ़ता। दैवतशकया प्रतिमाओ के भ्रम मे। परिहरामि=मना कर रहा हूँ। असुरपरवधे - राक्षसों के नगर मे रहने वालो को समाप्त करने मे। अभिसरी=सहायता के लिए। शक्रलोके = इन्द्रलोक स्वर्ग मे। सुपरजनपदाः = नगर की प्रजाओं के साथ। यान्ति = जाते है। स्वमुकृतैः = अपने पुण्यो के द्वारा। स्वभुजबलजिता = अपने बाहुबल से जीती गई। कृत्स्नाम् सम्पूर्ण। वसुमतीम् = पृथ्वी को। अनवसिताः = नही समाप्त किये जाने वाले। छन्द = अभिप्राय को। मृगयता= ढूँढते हुए। यदृच्छया = अनायास ही। आसादितं = प्राप्त कर लिया है। अभिधीयताम् = कहो। अत्रभवान् = ये।

अन्वय—दैवतम् इति इव शिरः नमयितुम् कामम् युक्तम्। प्रणामा तु अमन्त्रार्चितदैवत. वार्षलः स्यात्। (१५)

अन्वय—अस्मासु किञ्चित् वक्तवयम् ; विशिष्टः प्रतिपाल्यते । अयं प्रतिषेधः किं कृतः, नियमप्रभविष्णुता । (६)

अन्वय—एते ते असुरपुरवधे दैवतानाम् अभिसरीम् गच्छन्ति । एते ते सपुरजनपदाः स्वसुकृतैः शक्रलोके गच्छन्ति । एते ते कृत्स्नाम् वसुमतीम् स्वभुजवलजिताम् प्राप्नुवन्तः (सन्ति) । एते ते छन्द मृगयता मृत्युना चिरम् अनवसिताः । (६)

हिन्दी अर्थ

भरत—तब तक किस जगह विश्राम करूँ । ठीक है, देख लिया । वृक्षों के मध्य दिखने वाले इस मन्दिर में थोड़ी देर तक आराम करूँगा । इस प्रकार देवदर्शन और विश्राम दोनो काम हो जायेगे । और नगर के समीप थोडी देर बैठ कर फिर उसमे प्रवेश करना चाहिए, इस प्रकार शिष्टाचार का भी पालन हो जाएगा । अतः रथ को रोको ।

सूत्र—जैसी दीर्घायु की आज्ञा । (रथ ठहराता है)

भरत—(रथ से उतरकर) सूत, घोडो को एक ओर ले जाकर आराम कराओ ।

सूत—जो आज्ञा । (निकल जाता है)

भरत—(कुछ चलकर और देखकर) यहाँ तो विधिवत् खील और फूल के नैवेद्य दिए गए है । दीवारो की पुताई के ऊपर चन्दन से पाँचो अंगुलियों की छापें लगाई गई है । दरवाजो पर फूलो की मालाएँ लटक रही है । बाहर रेत बिछी है । क्या कोई त्योहार है, जिसकी यह विशेषता है अथवा प्रतिदिन का नियम पालन है । यह कौन से देवता का स्थान हो सकता है । यहाँ शस्त्र, ध्वजा आदि बाहरी चिह्न भी तो नही दीख पड़ते । ठीक है, अन्दर जाकर ज्ञात करूँगा ।

(प्रवेश करके और देखकर)

अहा, पत्थर की कारीगरी कितनी अच्छी है । मूर्तियो मे भावव्यंजना सजीव प्रतीत होती है । ये प्रतिमाएँ देवताओ की होकर भी मनुष्यो के समान जान पडती है । क्या यह चार देवताओ की मूर्तियो का समूह है ? अथवा जो कुछ भी होवे । मुझे तो इन्हे देखकर अपार आनन्द हो रहा है ।

ये देवमूर्तियाँ हैं, ऐसा समझकर तो इन्हें प्रणाम करना उचित है। किन्तु विशेष परिचय न होने से विना मन्त्र पढे ही प्रणाम करना होगा और यह परिपाटी शूद्रों की सी होगी। (५)

(प्रवेश करके)

देवकुलिक—अरे, नित्य नियत पूजा पाठ कर लेने के बाद मेरे भोजन आदि के अवसर पर इन मूर्तियो से मिलती जुलती आकृति वाला यह कौन व्यक्ति इस प्रतिमा गृह मे आया है। अच्छा, भीतर जाकर पता लगाता हूँ। (प्रवेश करता है)

भरत—नमस्कार है।

देवकुलिक—नही, नही, प्रणाम मत करो।

भरत—क्यों ? ऐसा मत कहो।

क्या हममे कोई दोष है, या हमसे किसी अच्छे आदमी की प्रतीक्षा कर रहे हो। यह प्रणाम करने के लिएमना क्यो रहे हो। क्या यह तुम्हारा अधिकार मद तो नही है ? (६)

देवकुलिक—मैं आपको इन कारणो से नही रोक रहा हूँ। किन्तु कही तुम ब्राह्मण होकर देवताओ के भ्रम से इन मूर्तियो को प्रणाम न कर लो इसलिए मना कर रहा हूँ। ये मूर्तियाँ क्षत्रियो की हैं ?

भरत—ऐसा। क्या ये क्षत्रिय महानुभाव है। अच्छा, तो फिर इन श्रीमानो के क्या नाम हैं।

देवकुलिक—ये इक्ष्वाकु वंशीय है।

भरत—(प्रसन्नतापूर्वक) क्या इक्ष्वाकुवंशी। क्या ये अयोध्या के राजा है ?

ये वे ही लोग है, जो राक्षसों का विनाश करने में देवताओ की सहायता के लिए जाते रहे है। ये वे लोग है, जो अपने पुण्यों के प्रताप से अपने नगर व प्रजा जनों के साथ स्वर्ग जाते रहे हैं। ये वे है, जो अपने बाहुबल से सम्पूर्ण भूमण्डल को जीतकर अपने अधिकार में करते रहे हैं। और ये वे है, जो इच्छानुसार छूटने वाली मृत्यु के द्वारा भी बहुत समय तक समाप्त नही किए जाते हैं, अर्थात् जिनकी मृत्यु अपनी इच्छा पर निर्भर करती है। (७)

अहा, अकस्मात् स्वेच्छा से ही मुझे महान् फल मिल गया। आप कहिए, ये कौन महानुभाव है ?

(४) मूल

देवकुलिक:—अयं खलु तावत सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः।

भरत:—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिक:—अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजन-सहस्त्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः।

भरत:—अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः। नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय। अभिधीयतां कस्ताव-दत्रभवान् ?

देवकुलिक:—अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः।

भरत:—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय। (दशरथस्य प्रतिमामव-लोकयन् पर्याकुलो भूत्वा)

भोः ? बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम्। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिक:—अयं दिलीपः।

भरत:—पितृपितामहो महाराजस्य। ततस्ततः।

देवकुलिक:—अत्रभवान् रघुः।

भरत:—पितामहो महाराजस्य। ततस्ततः।

देवकुलिक:—अत्रभवानजः।

भरत:—पिता तातस्य। किमिति किमिति।

देवकुलिक:—अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः।

भरत:—भवन्त किञ्चित् पृच्छामि। धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते ?

देवकुलिक:—न खलु, अतिक्रान्तानामेव।

भरत:—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्।

देवकुलिक:—तिष्ठ।

येन प्राणाश्च राज्य च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमा दशरथस्य त्व प्रतिमा किं न पृच्छसे ॥ (८)

भरतः—हा तात ! (मूर्च्छितः पतति । पुनः प्रत्यागत्य)

हृदय भव सकामं यत्कृते शकसे त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यम् च तावत् ।
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥ (९)
आर्य !

देवकुलिकः—आर्येति-इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वियम् । कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु ?

भरतः—अथकिम् अथकिम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः ।

देवकुलिकः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

भरतः—तिष्ठ । शेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिक.—का गतिः । श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथः । सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमन प्रयोजनं न जाने ।

भरतः—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः । (द्विगुण मोहमुपगतः)

शब्दार्थ—देवकुलिकः = पुजारी । सन्निहितसर्वरत्नस्य = सभी प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओ को अपने पास रखने वाले । विश्वजितो यज्ञस्य=विश्वजित् नामक यज्ञ के । प्रवर्तयिता=करने वाले । प्रज्वलितधर्मप्रदीप.=धर्म रुपी दीपक को सतत जलाने वाले । धर्मपरायणाय=धर्मनिष्ठ को । अभिधीयता= कहो । सवेशनोत्थापनयोः=सोने के और उठने के समय में । सहस्र=हजार । पुण्याहशब्दरवो=पवित्र मन्त्र पाठो की वाचन ध्वनि वाला । एताम्=इस (रक्षा) को । अतिक्रान्त =पार गई । आवेदित=देना । प्रियावियोग = प्रिय रानी इन्दुमति का विरह । निर्वेद=विषयो से विमुखता । नित्य=सदा । अवभृतस्नान= यज्ञ की दीक्षा का अभिषेक । प्रशान्तरजा.=रजोगुण को धोने वाले । अजः= राजा का नाम । श्लाघनीय=प्रशंसनीय । पश्चातापाय=प्रिया की अत्यधिक आसक्ति रूपि अनुताप वाले । पर्याकुलः=व्याकुल । वहुमानव्याक्षिप्तेन=अत्यन्त सम्मान या गौरव के कारण अन्यत्र लगे हुए । सुव्यक्तं=भली प्रकार से । नावधारितं=नही निश्चय कर सका । पितृपितामहः=परदादा । महाराजस्य

रथ के। पितामहः=दादा। तातस्य=पिता दशरथ के। धरमाणानाम्=
श धारण करने वालों के। अतिक्रान्तानाम् मृत्यु को प्राप्त करने वालों के।
पृच्छे=जाने की अनुमति लेता हूँ। स्त्रीशुल्कार्थे=विवाह के समय स्त्री को
ए जाने वाले द्रव्य के लिए। विसर्जिताः=छोड दिए। पृच्छसे=पूछ रहे हो।
ागत्य=होश में आकर। सकामं=पूर्ण मनोरथ वाले। यत्कृते=जिस विषय
। शकसे=आशका कर रहे थे। स्पृशति=सम्बन्ध युक्त होता है। नीचः=
न्दनीय। विशोध्य=(अग्नि द्वारा) शुद्ध करना चाहिए। आलाप.=बोला
ने का शब्द। शेषम्=अवशिष्ट या बचा हुआ। गति.=उपाय। उपरत=
र गए।

अन्वय—येन स्त्रीशुल्कार्थे प्राणाः राज्यं च विसर्जिताः, दशरथस्य इमां
तिमा त्वं किम् न पृच्छसे। (८)

अन्वय—हृदय, सकामं भव, त्वं यत्कृते शंकसे, तत् पितृनिधन शृणु,
ावत् धैर्यम् च गच्छ। तु नीचः अयम् शुल्कशब्दः मां स्पृशति, अथ च सत्यम्
भवति, तत्र देहः विशोध्य। (९)

हिन्दी अर्थ

देवकुलिक—ये महाराज दिलीप है, जिन्होने सभी रत्नो को इकट्ठा कर, विश्वजित् नामक यज्ञ को सम्पन्न किया था और धर्म के दीपक को प्रकाशित किया था।

भरत—इन धर्म प्राण को नमस्कार। आगे बताइए, ये कौन है ?

देवकुलिक—ये महाराज रघु है, जिनके कान सोते-जागते समग्र पुण्याह वाचन की मन्त्र ध्वनि से पूर्ण रहा करते थे।

भरत—ओह, प्रवल मृत्यु ने इस घेरे को भी पार कर लिया। ब्राह्मणो की सेवा मे अपनी पूरी सम्पत्ति समर्पित करने वाले महाराज रघु को प्रणाम हो। अब कहो, ये श्रीमान् कौन है ?

देवकुलिक—ये महाराज अज है, जिन्होने अपनी प्रिय रानी के विरह मे विरक्त होकर राजपाट को छोड़ दिया था और जो नित्य प्रति किए जाने वाले यज्ञों के अवसान में अभिषेकों से सम्पूर्ण कल्मषभार को धो देने वाले थे।

भरत—प्रशंसनीय पश्चात्ताप करने वाले को नमस्कार है। (दशरथ की प्र
को देखते हुए और घबरा कर) अरे, मेरा हृदय इन महापुरु
गौरवचिन्ता मे लग गया था, इसलिए ठीक से नही समझ सका।
आप फिर से बताइये कि ये कौन है ?

देवकुलिक—ये दिलीप हैं।

भरत—महाराज के प्रपितामह। इसके बाद।

देवकुलिक—ये हैं रघु।

भरत—महाराज के पितामह। इसके आगे।

देवकुलिक—ये श्रीमान् अज हैं।

भरत—महाराज के पिता। क्या कहा, क्या कहा ?

देवकुलिक—यह दिलीप, यह रघु, यह अज हैं।

भरत—मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। क्या जीवितों की भी प्रति
स्थापित की जाती हैं ?

देवकुलिक—नही, केवल मृतको की।

भरत—अच्छा, अब आप मुझे जाने की आज्ञा दें।

देवकुलिक—ठहरो,

जिन्होंने स्त्री शुल्क के लिए अपने राज्य और प्राण सब कुछ
दिए, उन महाराज दशरथ की प्रतिमा के विषय मे आप क्यों
नही जानना चाहते। (८)

भरत—हा पिताजी। (बेहोश होकर गिरता है। फिर होश मे आकर)
हे हृदय, अब तुम्हारी इच्छा पूरी हुई, जिसकी तुम्हे आशका थी,
पिता की मृत्यु के समाचार को सुनो और धीरज बांधो। किन्तु हा
यदि स्त्री शुल्क मे याचित राज्य का उद्देश्य मैं बनाया गया होऊँ
तब तो देह की शुद्धि करनी पड़ेगी अर्थात् कड़ी परीक्षा देकर अप
निर्दोष होना सिद्ध करना पड़ेगा। (९)
आर्य !

देवकुलिक—'आर्य, कह कर बात करना तो इक्ष्वाकु वंशी लोगों का क्रम है
क्या आप कैकयी के पुत्र भरत तो नही है ?

ा—और क्या, और क्या। मै दशरथ का पुत्र भरत हूँ, कैकेयी का नही।

कुलिक—तो अब आप जा सकते है।

ा—ठहरो, बची हुई बात भी कह दो।

कुलिक—क्या किया जाए। सुनिए। महाराज दशरथ की मृत्यु हो गई। सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन को क्यो चले गए, इसका मुझे कारण ज्ञात नही है।

त—क्या कहा, क्या पूज्य राम भी वन को गए? (फिर मूर्च्छित हो जाता है)

) मूल

वकुलिकः—कुमार! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

रतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव॥ (१०)

आर्य! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति। तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम्।

देवकुलिकः—श्रूयताम्, तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याऽभिहितं किल।

भरतः—तिष्ठ,

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसत्या व्रज सुत वनमित्यार्योऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः॥ (११)

(मोहमुपगतः)

(नेपथ्ये)

उत्सरतार्याः! उत्सरत।

देवकुलिकः—(विलोक्य) अये!

काले खल्वागता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते।
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः॥ (१२)

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्रः— इत इतो भवत्य.।

इद गृह तत् प्रतिमानृपस्य नः
समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतै
र्विना प्रणाम पथिकैरुपास्यते ॥ (१३)

(प्रविश्यावलोक्य) भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम।
अयं हि पतितः कोऽपि वय स्थ इव पार्थिवः।

देवकुलिकः—

परशङ्कामल कर्तुम् गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥ (१४)
(निष्क्रान्तः)

दव्यः—(सहसोपगम्य) हा जात ! भरत !

भरतः— (किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा—(इत्यर्धोक्ते सविषादम्) अाहो स्वरसादृश्य मन्ये प्रतिमास्थो महाराजो व्याहरतीति।

भरतः—अथ मातृणामिदानी काऽवस्था।

देव्यः—जात ! एषा नोऽवस्था। (अवगुण्ठनमपनयन्ति)

सुमन्त्रः—भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा।

भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मा सूचयति कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु।

सुमन्त्रः—कुमार ! अथ किम्। सुमन्त्रोऽस्मि।

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः
कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने
जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः॥ (१५)

शब्दार्थ—समाश्वस्य=आश्वासन पाकर। अटवीभूतां=अरण्य के तुल्य वर्जिताम्=रहित। पिपासार्तः=पानी की इच्छा से पीडित। अनुधावामि=पीछे दौडता हूं। क्षीणतोयां=सूखे जल वाली। विस्तरश्रवणं=विस्तार से समाचार

सुनना। स्थैर्यम्=स्थिरता को। अनवशेषम्=सम्पूर्ण रूप से। अभिधीयताम्=कहा जाए। अभिषिच्यमाने=राज्य की धुरी पर नियोजित करते हुए। शुल्कदोष=विवाह के मूल्य रूपी अनर्थ को। स्मृत्वा=याद करके। भवतु=होवे। मम सुतः=मेरा पुत्र भरत। अभिहितं=कहा। धैर्येण=धैर्यपूर्वक। आश्वसत्या=साहस प्राप्त होने पर। व्रज = जाओ। सुत=हे पुत्र राम। वद्धचीर=वल्कल वस्त्र पहने हुए को। निधनम्=मृत्यु को। असदृश=आरोग्य अर्थात् बिना अवसर के। पात्यन्ते= गिराए जा रहे हैं। धिक्प्रलापाः=धिक्कार के वाक्य। ननु=सचमुच मे। मयि=मुझ पर। सदृशाः= समुचित। शेपा= जननी कैकेयी की भर्त्सना से बचे हुए। प्रकृतिभिः=प्रजाजनो के द्वारा। मोहम् उपगतः=संज्ञाहीन हो जाता है। उत्सरत=हटो। आर्याः=सज्जनो। काले=उचित समय पर। देव्यः= कौसल्या आदि रानियां। उपागते=प्राप्त होने पर। अजलस्य=जलरहित प्यासे व्यक्ति के लिए। जलाञ्जलिः=जल की अंजलि। इतः इतः=इधर से आइए इधर से। भवत्यः=आप देवियां। प्रतिमानृपस्य=प्रतिमा रूप से बचे राजाओ का नः=हमारे। समुच्छ्रयः= उन्नत। हर्म्यदुर्लभः=राज सदन से भी बढ़कर। अयन्त्रितैः=बिना रोके जाने वाले। अप्रतिहारिकागतैः=द्वारपाल की अनुमति के बिना आने वाले। विना प्रणामं=प्रणाम रहित। पथिकैः=मुसाफिरो द्वारा। उपास्यते=उपयोग में लिया जाता है। वयःस्थः=युवा। इव=समान। पार्थिवः=राजा = दशरथ। परशङ्काम्=किसी पराए की आशंका को। अलं कर्तुम्=मत करो। गृह्यताम्=ग्रहण करो। अन्वास्यमानः=पीछा किए जाते हुए। चिरजीविदोषैः=दीर्घजीवी पुरुष मे आसानी से प्राप्त होने वाले दूषणों के द्वारा। कृतघ्नभावेन=किए हुए के उपकार को न मानने की भावना के द्वारा। विडम्ब्यमानः=हँसी उडाया गया। विपन्ने=मर जाने पर। जीवामि=जी रहा हूँ। सूतः=सारथि।

अन्वय—पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्याम् क्षीणतोयाम् नदीम् इव पिपासार्तः अनुधावामि। (१०)

अन्वय—तं शुक्लदोषं स्मृत्वा मम सुतः राजा भवतु इति तया अभिहितम्। तत् धैर्येण आश्वसन्त्या सुत वनं व्रज इति आर्यः अपि अभिहितः। तं वद्धचीरं दृष्ट्वा राजा असदृशं निधनं गतः ननु, प्रकृतिभिः शेषाः सदृशाः धिक् प्रलापाः ननु मयि पात्यन्ते। (११)

अन्वय—पुत्रे मोहम् उपागते देव्यःकाले आगताः खलु, मातृणां हस्त-स्पर्शः हि अजलस्य जलाङ्जलिः । (१२)

अन्वय--यस्य स हर्म्यदुर्लभः समुच्छ्रयः तत् इदं नः प्रतिमानृपस्य गृहम्, अयन्त्रितैः अप्रतिहारिकागतैः पथिकैः प्रणामं विना उपास्यते । (१३)

अन्वय—हि अय कः अपि वयःस्थः पार्थिवः इव पतितः । परशट्काम् कर्तुम् अलम्, हि अयम् भरतः, गृह्यताम् । (१४)

अन्वय—चिरजीवदोषैः अन्वास्यमानः, कृतघ्नभावेन विडम्व्यमानः अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने शून्यस्य रथस्य सूतः जीवामि । (१५)

हिन्दी अर्थ

देवकुलिक—कुमार, धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

भरत—(होश में आकर)

पिताजी और बड़े भाई राम से शून्य वन के समान इस अयोध्या में मैं जा रहा हूं । जैसे कोई प्यासा आदमी सूखी नदी की ओर दौडता जा रहा हो । (१०)

आर्य, विस्तारपूर्वक सुनने से मेरे मन को कुछ सहारा मिल रहा है, अतः समूचे वृत्तान्त को पूरी तरह से कहो ।

देवकुलिक—सुनिए, जब महाराज दशरथ राजकुमार राम का अभिषेक कर रहे थे उस समय आपकी माता कैकेयी ने कहा ।

भरत—ठहरो,

उस अनर्थकारी विवाह शुल्क को याद कर उसने कहा होगा कि मेरा पुत्र राजा बने । इस प्रार्थना के सफल हो जाने से उसका बल बढा होगा और फिर उसने कहा होगा कि राम वन को जाएँ । राम को वल्कल वस्त्र पहने देख कर महाराज को असामयिक मृत्यु प्राप्त हो गई होगी । इन सब बातो से दु.खी प्रजावर्ग इन सबका मूल मुझे मानकर धिक्कारती होगी और उसका धिक्कारना उचित भी है ।(११)

(मूर्च्छित हो जाता है)

(नेपथ्य में)

हट जाइए, हट जाइए ।

देवकुलिक—(देख कर) अरे,

पुत्र के संज्ञाहीन होने पर माताएं आ गईं, यह बड़ा अच्छा हुआ। क्योकि पुत्र के लिए माता का हस्तस्पर्श प्यासे के लिए जलधारा के समान हुआ करता है। (१२)

(इसके बाद रानियो व सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—देविया, आप इधर से आयें।

जो ऊँचाई में राजमहलो से भी बड़ा है, ऐसा यह हमारा प्रतिमा रूप से अवस्थित महाराज का सदन है। यहां यात्री लोग स्वतन्त्रतापूर्वक, पहरेदारों की बिना रोक-टोक के आते-जाते है तथा बिना प्रणाम के उपासना करते है (१३)

(प्रवेश करके और देखकर)

हे देवियों, आप अन्दर मत आइए, मत आइए।

यहा कोई कुमार गिर पडा है, ऐसा लगता है मानो राजा दशरथ का युवावस्था का शरीर हो।

देवकुलिक—आप किसी दूसरे की आशंका मत कीजिए। ये भरत है। आप इन्हे सभालिए। (१४)

(निकल जाता है)

रानियां—(शीघ्रता से पास जाकर) हा पुत्र, भरत।

भरत—(कुछ होश मे आकर) आर्य।

सुमन्त्र—जय हो महा—(इस प्रकार आधा कहकर, दुःख पूर्वक) अहा, बोली में कितनी समानता है। लगता है जैसे दशरथ की प्रतिमा ही बोल रही हो।

भरत—तो फिर माताओं की अब क्या दशा है?

रानियां—हे पुत्र, हमारी दशा यह है। (घूंघट हटाती हैं)

सुमन्त्र—देवियो, अपने आवेग को रोकें।

भरत—(सुमन्त्र को देख कर) सभी प्रकार के व्यवहार में आपकी उपस्थिति से मुझे जान पड़ता है कि आप सुमन्त्र हैं।

सुमन्त्र—कुमार, और क्या ? मैं सुमन्त्र ही हूं।

दीर्घकाल-जीविता ने मुझ में अनेक बुराइयाँ ला दीं। कृतघ्नता ने मेरा उपहास किया, और अब मैं राजा दशरथ के मर जाने पर उनके सूने रथ का सारथि होकर जी रहा हूं। (१५)

(६) मूल

भरतः—हा तात ! (उत्थाय) तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातृणाम्।

सुमन्त्रः—बाढम्। इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या।

भरतः—अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये।

कौसल्या—जात ! नि:सन्तापो भव।

भरतः—(आत्मगतम्) आक्रुष्ट इवास्म्यनेन। (प्रकाशम्) अनुगृहीतोऽस्मि। ततस्तत।

सुमन्त्रः—इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा।

भरतः—अम्ब ! लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये।

सुमित्रा—जात ! यशोभागी भव।

भरतः—अम्ब ! इद प्रयतिष्ये। अनुगृहीतोऽस्मि। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—इयं ते जननी।

भरतः—(सरोपमुत्थाय) आः पापे !

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता॥ (१६)

कैकेयी—जात ! कि मया कृतम् ?

भरतः—किं कृतमिति वदसि ?

वयमयशसा चीरेणार्यो नृपो गृहमृत्युना
प्रततरुदितैः कृत्स्नायोध्या मृगैः सह लक्ष्मणः।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः स्नुषाध्वपरिश्रमै
धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः॥ (१७)

कौसल्या—जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ?

भरतः—मातरमिति। अम्ब ! त्वमेव मे माता। अम्ब ! अभिवादये।

कौसल्या—न हि, न हि । इयं ते जननी ।

भरतः—आसीत् पुरा । न त्विदानीम् । पश्यतु भवती—

त्यक्ता स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः
पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते ।
लोकेऽपूर्वम् स्थापयाम्येष धर्मम्
भर्तृद्रोहादस्तु माताप्यमाता ॥ (१८)

शब्दार्थ—उपदेष्टुम् इच्छामि = जानना चाहता हूं । बाढम् = हाँ । तत्रभवतः = उन श्रीमान् की । अनपराद्धः = अपराध नही करने वाला । निःसन्तापः = हृदय की वेदना से रहित । भव = बनो । आक्रुष्टः = तिरस्कृत । अस्मि = हूं । अतिसन्धित = ठगा गया । यशोभागी = यशस्वी । प्रयतिष्ये = प्रयत्न करूँगा । उत्थाय = उठ कर । पापे ! = पाप करने वाली दुष्टे । मध्यस्था = बीच मे स्थित । शोभसे = सुन्दर लगती हो । कुनदी = बुरी नदी । अयशा = निन्दा के द्वारा । चीरेण = वल्कल वस्त्र के द्वारा । गृहमृत्युना = यमराज के घर के द्वारा । प्रततरुदितैः = लगातार आँसू बहाने के द्वारा । कृत्स्ना = सारी । दयिततनयाः = पुत्रों से प्रेम करने वाली अर्थात् कौसल्या व सुमित्रा (दयिताः प्रियाः तनयाः पुत्राः यासां ताः अम्बाः) स्नुषा = पुत्रवधू सीता । अध्वपरिश्रमैः = मार्ग में चलने के परिश्रम से । धिक् इति वचसा = कैकेयी को धिक्कार है—इस प्रकार के निन्दा पूर्ण वाक्यो से । उग्रेण = प्रचण्ड या मर्मभेदी । आत्मा = स्वयं । त्वया = तुम कैकेयी के द्वारा । ननु = सचमुच में । योजिताः = संलग्न किया । जात = हे पुत्र । सर्वसमुदाचारमध्यस्थः = सकल सदाचार के पालन में प्रवण । भवती = श्रीमती । शीलसंक्रान्तदोषैः = आचरण में दोष आ जाने के कारण । स्नेहं = ममता को । अपुत्राः क्रियन्ते = अपुत्र के समान आचरण किया जा रहा है । लोके = संसार में । अपूर्वम् = अनोखे । स्थापयामि = प्रवर्तित करता हूं । एषः = यह मैं । धर्मम् = मान्यता को । भर्तृद्रोहात् = पति से विरुद्ध आचरण करने के कारण । अस्तु = होवे । अमाता = बुरी जननी ।

अन्वय—मम मातुः मातुः च मध्यस्था त्वम् गंगायमुनयोः मध्ये प्रवेशिता कुनदी इव न शोभसे । (१९)

अन्वय—ननु त्वया वयम् अयशसा योजिताः, आर्यः चीरेण (योजितः) नृपः गृहमृत्युना, कृत्स्ना अयोध्या प्रततरुदितैः, लक्ष्मणः मृगैः सह (योजितः), दयिततनयाः अम्बाः शोकेन, स्नुषा अध्वपरिश्रमैः, आत्मा च उग्रेण धिक् इति वचसा (यजिता)। (१७)

अन्वय—ननु शीलसंक्रान्तदोषैः तावत् पुत्राः स्नेह त्यक्त्वा अपुत्राः क्रियन्ते। एषः अहम् लोके अपूर्वम् धर्मम् स्थापयामि, भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्तु। (१८)

हिन्दी अर्थ

भरत—हा तात, (उठकर) तात, अब मैं माताओं को प्रणाम करने का क्रम जानना चाहता हूँ।

सुमन्त्र—अच्छा, यह श्री राम की माता देवी कौसल्या है।

भरत—माँ, यह निरपराध भरत आपको प्रणाम करता है।

कौसल्या—पुत्र, तुम्हारा दुःख दूर होवे।

भरत—(मन में) इस कथन से तो मानो मेरी भर्त्सना की जा रही है। (प्रकट-रूप से) बड़ी कृपा है। अच्छा, फिर।

सुमन्त्र—यह लक्ष्मण की माँ सुमित्रा देवी है।

भरत—माँ, मैं प्रणाम करता हूँ, जिसे राम की सेवा का अवसर न देकर लक्ष्मण ने ठग लिया है।

सुमित्रा—पुत्र, कीर्ति प्राप्त करने वाले बनो।

भरत—माँ, इसका प्रयास करूँगा। कृतकृत्य हूँ। इसके बाद।

सुमन्त्र—यह तुम्हारी माता है।

त—(क्रोध सहित उठकर) अरी पापिनी,

मेरी जननी कौसल्या और जननी सुमित्रा के बीच बैठी हुई तुम उसी तरह बुरी लगती हो, जैसे गंगा और यमुना के बीच में प्रविष्ट कोई कुनदी। (१९)

कैकयी—पुत्र, मैंने क्या किया?

भरत—'क्या किया' यह कहती हो।

तुमने हमें (मुझे) अपयश से कलंकित किया, पूज्य राम को वल्कल

धारण करने वाला बना दिया। महाराज को गृहकलह से मरने को विवश किया। सारी अयोध्या को निरन्तर रुला दिया। लक्ष्मण को हरिणों का सहवासी बना दिया। पुत्रों से स्नेह करने वाली माताओं को शोक सागर में डुबो दिया। पुत्रवधू सीता को वन मे भटकने को वाध्य किया और अपने को भी कठोर धिक्कार का पात्र बनाया। (१७)

कौसला—पुत्र, सब प्रकार के शिष्टाचार को जानते हुए भी तुम अपनी जननी को प्रणाम क्यों नही करते हो ?

भरत—क्या अपनी जननी को ? माँ, आप ही मेरी जननी है। माँ, मै प्रणाम करता हूँ।

कौसल्या—नही, नही, यह कैकयी तुम्हारी जननी है।

भरत—पहले थी। किन्तु अब नही है। आप देवी देखिए,
इसने दुष्ट परिजनो के सहवास मे सत्य स्नेह को छोड कर वटों से नाता तोड लिया है। आज मै ससार मे एक नये धर्म की स्थापना करने जा रहा हूँ कि जो स्त्री अपने स्वामी से विद्रोह करे, वह माँ कहलाने की अधिकारिणी नही है। (१८)

(७) मूल

कैकेयी—जात ! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम्।

भरतः—किमिति किमिति।

कैकेयी—पुत्रको मे राजा भवत्विति।

भरतः—अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः ?
पितुर्मे नौरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते।
दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते॥ (१९)

कैकेयी—जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या।

भरतः—वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया।
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम्॥ (२०)

कैकेयी—जात ! देशकाले निवेदयामि।

भरत.—अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान

किम् नृपफलतर्प. किम् नरेन्द्रो न दद्यात् ।
अथ तु नृपतिमातेत्येप शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्य किम् तवार्यो न पुत्रः ॥ (२१)
कष्ट कृत भवत्या,
त्वया राज्यैपिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठ च त्व व्रज वनमिति प्रेपितवती ।
न शीर्णम् यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती
महो धात्रा सृष्ट भवति ! हृदयं वज्रकठिनम् ॥ (२२)

सुमन्त्रः—कुमार ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिपेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः,
गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यप्रालिता ।
एव नृपतिहीना हि विलय यान्ति वै प्रजा. ॥ (२३)

भरत.—अनुगच्छन्तु मा प्रकृतय' ।

सुमन्त्रः—अभिषेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति ?

भरत.—अभिषेकमिति । इहात्रभवत्यै प्रदीयताम् ।

सुमन्त्र—क्व भवान् यास्यति ?

भरत.—तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या त विनायोध्या सायोध्या यत्र राघव. ॥ (२४)
(निष्क्रान्ता सर्वे)

तृतीयोऽङ्क. ।

शब्दार्थ—जात = पुत्र । सत्यवचन - विवाह के समय दिया गया शुल्क प्रतिज्ञा वाक्य । रक्षन्त्या = सच करने वाली । तथोक्तम् = वैसा कहा । पुत्रकः — बेटा । भवत्याः = आपका अर्थात् कैकेयी का । मे = मेरे । औरस. = स्व ?र्योत्पन्न । क्रमेण = बड़े की परम्परा से । अभिषिच्यते = राज्याभिषेक किया जाता है । दयिताः = प्रिय । स्युः = होवे । प्रकृतीना = अमात्य आदि को (यहाँ 'रुच्' के योग मे चतुर्थी आनी चाहिए, किन्तु षष्ठी का प्रयोग किया गया है । यह भास का 'आर्ष प्रयोग' है) । रोचते = अच्छा लगता है । शुल्कलुब्धा = विवाह मे प्रतिज्ञात अर्थ को लेने की लोभी । ननु = क्या । प्रष्टव्या = पूछा जाना चाहिए । हृतराजश्रीः = जिसकी राजलक्ष्मी ले ली गई है । पदातिः =

पैदल चलने वाला । भार्यया सह = सीता के साथ । आज्ञप्तः = आज्ञा प्राप्त करके लिया गया है । उदाहृतम् = कहा गया है । देशकाले = उचित स्थान और अवसर पर । अयशसि = अपयश मे । लोभः = आकर्षण । कीर्तयित्वा = कह कर या नाम लेकर । किमु = क्या । नृपफलतर्षः = राजभाव से प्राप्त भोग्य वस्तु की तृष्णा । दद्यात् = प्रदान की । नृपतिमाता = राजा की जननी । इष्ट = अभिलषित । भवति = हे देवी । आर्यः = राम । कष्ट = बहुत बुरा पाप । राज्यैषिण्या = राज्य की कामुक बनी । असुभिः = प्राणो से । गणित. —आप । प्रेषितवती = भेजा । शीर्णम् = टूटा । वल्कलवतीम् = वल्कलवस्त्र —जहाँ करने वाली को । धात्रा = विधाता के द्वारा । सृष्ट = बनाया गया है । वज्रकठिनम् = इन्द्र के आयुध वज्र के समान कठोर । प्रकृतिभि. = मन्त्री आदि अधिकारियो के साथ । पुरस्कृत्य = आगे करके । प्रत्युद्गतौ = सम्मान करते हुए । विज्ञापयत = कह रहे है । गोपहीना = रक्षक से रहित । विलय = विनाश को । यान्ति = प्राप्त करती है । अपालिताः = बिना रक्षा के । वै = सचमुच मे । अनुगच्छन्तु = पीछे चले । विसृज्य = छोड कर । यास्यति = जायेंगे । अत्रभवत्यै = इन देवी कैकेयी को । प्रदीयताम् = दे । यास्यामि = जाऊँगा । लक्ष्मणप्रिय = राम । राघव. = राम ।

अन्वय—मे पितुः औरसः पुत्र न ? क्रमेण अभिषिच्यते । भ्रातरः दर्पिताः न स्यु । प्रकृतीनाम् न रोचते । (१६)

अन्वय—हृतराजश्री. पदातिः वल्कलैः भार्यया सह त्वया वनवासम् आज्ञप्तः । एतत् अपि शुल्के उदाहृतम् । (२०)

अन्वय—यदि अयशसि लोभः, अस्मान् कीर्तयित्वा किम् ? नृपफलतर्ष किमु ? नरेन्द्रः किं न दद्यात् । अथ तु नृपतिमाता इति एषः शब्दः तव इष्टः । भवति, सत्य वदतु, किम् आर्यः तव पुत्रः न ? (२१)

अन्वय—भवति, राज्यैषिण्या त्वया नृपतिः असुभिः न एव गणितः, त्वम् ज्येष्ठं सुतं च वन व्रज इति प्रेषितवती । जनकतनया वल्कलवती दृष्ट्वा यत् तव हृदयं न शीर्णम्, अहो धात्रा वज्रकठिनम् हृदयं सृष्टम् । (२२)

अन्वय—यथा गोपहीनाः गावः अपालिताः विलयं यान्ति, एवं हि नृपतिहीनाः प्रजाः वै विलयं यान्ति । (२३)

अन्वय--यत्र असौ लक्ष्मणप्रियः वर्तते, तत्र यास्यामि । अयोध्या तं विना अयोध्या न । सा अयोध्या यत्र राघव. । (२८)

हिन्दी अर्थ

कैकयी—पुत्र, महाराज की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए ही मैने वैसा कहा था।

भरत— आपने क्या कहा था ?

कैकयी—कि मेरा बेटा राजा बने ।

भरत—तो फिर वे पूज्य राम आपके क्या है ?

क्या राम मेरे पिता दशरथ के स्वय के पुत्र नही है ? क्या अभिषेक ज्येष्ठ के क्रम से नही हुआ है ? क्या हम भाइयो मे परस्पर अनुराग नही है ? क्या राम का अभिषेक प्रजाओ की रुचि के अनुसार नही था । (१९)

कैकयी—पुत्र, विवाह शुल्क की लोभी माँ से ऐसे प्रश्न नही पूछे जाते ।

भरत –तुमने राज्य को लेकर और वल्कल पहना कर राम को सीता के साथ जो पैदल वन मे भेज दिया, क्या वह भी विवाह शुल्क मे ही कहा गया था ? (२०)

कैकयी— पुत्र, उपयुक्त स्थान और समय पर ही बताऊँगी ।

भरत—हे देवी, यदि तुम्हे अपयश ही प्रिय था, तो बीच मे ही मेरा नाम क्यो लिया ? यदि तुमको राज्य के ऐश्वर्य की कामना थी, तो महाराज से तुम्हे क्या नही मिल सकता था ? यदि तुम्हे 'राजमाता' कहलाने की ही अभिलाषा थी, तो सच बताना, क्या राम तुम्हारे पुत्र नही है ? (२१)

तुमने बहुत बुरा किया है ।

तुमने राज्य के लोभ के कारण महाराज के जीवन की भी चिन्ता नही की और 'वन मे जाओ' यह कह कर बड़े पुत्र राम को भी वन मे भेज दिया । सीता को वल्कल पहने देखकर भी तुम्हारी छाती नही फटी, यह बड़े आश्चर्य की बात है । लगता है, विधाता ने तुम्हारे हृदय को वज्र के से भी अधिक कठोर बनाया है । (२२)

सुमन्त्र— कुमार, प्रजावर्ग और अमात्यो के साथ महर्षि वसिष्ठ और वामदेव आपके राज्याभिषेक के लिए आपको सूचित कर रहे है कि—

जिस प्रकार गोपाल के बिना गाएँ सुरक्षा के अभाव में नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार राजा के बिना भी प्रजाएँ निश्चित ही विनाश को प्राप्त करती हैं। (२३)

ा—प्रजा मेरे पीछे-पीछे आए।

अ—राज्याभिषेक को छोड़ कर आप कहाँ जायेंगे ?

त—अभिषेक ? अभिषेक तो इन देवी को दीजिए।

त्र—आप कहाँ जायेंगे ?

त—जहाँ वे लक्ष्मण के प्रिय राम है, मै वही पर जाऊँगा। अयोध्या उनके बिना अयोध्या नही है। वही अयोध्या है, जहाँ राम है। (२४)

(सब निकल जाते है)

तीसरा अंक समाप्त।

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात् ।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् ॥ (१४)
आर्ये ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

सीता—(आत्मगतम्) नहि रूपमेव । स्वरयोगोऽपि स एव । (प्रकाशम्) वत्स ! चिरजीव ।

भरत—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—एहि वत्स ! आतृमनोरथं पूरय ।

सुमन्त्रः—प्रविशतु कुमारः ।

भरतः—तात ! इदानीं किं करिष्यसि ?

सुमन्त्र.—अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गम् याते नराधिपे ।
विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥ (१५)

भरत.—एवमस्तु । (राममुपगम्य) आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

राम.—(सहर्षम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाण
मालिङ्ग मा सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥ (१६)

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

शब्दार्थ—आत्माभिप्रायम् = मेरी इच्छा को । अनुवर्तयितुम् = जानना । सत्कृत्य = सत्कार करके । इयं=यह सीता । मानहेतोः = सम्मान के लिए । भावं = स्नेह या वात्सल्य को । तनये = पुत्र पर । निवेश्य = आगे करके । तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा = हिम से भरे नील कमल दल के समान नेत्रों वाली । हर्षास्रम् = आनन्दाश्रु को । आसारम् इव = धारासम्पात या मूसलाधार वर्षा के समान । उत्सृजन्ती छोडती हुई । हं = अरे । वेलाम् = समय पर । वधूः = वह अर्थात् रामपत्नी सीता । स्त्रीमय = स्त्री के रूप में । तेजः = ओज । जातम् = उत्पन्न हुआ । क्षेत्रोदरात् = खेत के बीच से । हलात् = हल चलाते समय । तपसः = तपस्या का । सन्निदर्शनम्=अच्छा उदाहरण । चिरं =

बहुत समय तक। जीव = जीवित रहो। पूरय = सफल करो। पश्चात् = बाद मे। प्रवेक्ष्यामि = प्रवेश करूँगा। याते = चले जाने पर। विदितार्थस्य = वृत्तान्त को जानने वाले। पूर्वदर्शनम् = प्रथम बार मिलना। स्वस्ति = कल्याण हो। प्रसारय = फैलाओ। कवाटपुटप्रमाणम् = किवाड़ो के समान विस्तीर्ण। आलिङ्ग = भेंट करो। सुविपुलेन = खूब लम्बे। भुजद्वयेन = दोनों हाथो से। उन्नामय = ऊँचा उठाओ। आननम् = मुख को। शरदिन्दुकल्पम् = शरत्काल के चन्द्रमा के समान। प्रह्लादय = शीतल बनाओ। व्यसनदग्धम् = दुःख से जले हुए।

अन्वय—इयं तुषारोत्पलपत्रनेत्रा आसारम् इव हर्षास्रम् उत्सृजन्ती तनये भावं निवेश्य माता इव स्वयं मानहेतोः गच्छतु। (१३)

अन्वय—हलात् क्षेत्रोदरात् जातम् इद तत् स्त्रीमयं तेजः नृपेन्द्रस्य जनकस्य तपसः सन्निदर्शनम्। (१४)

अन्वय—अहम् पश्चात् प्रवेक्ष्यामि, नराधिपे स्वर्गम् याते विदितार्थस्य-रामस्य मम एतत् पूर्वदर्शनम्। (१५)

अन्वय—कवाटपुटप्रमाण वक्षः प्रसारय। मां सुविपुलेन भुजद्वयेन आलिङ्ग इद। शरदिन्दुकल्पम् आननम् उन्नामय। इदं व्यसनदग्धं शरीरं प्रह्लादय। (१६)

हिन्दी अर्थ

राम—वत्स लक्ष्मण, क्या इसमें भी तुम मेरी अनुमति की आवश्यकता समझते हो। जाओ और जल्दी से भरत को सम्मानपूर्वक अन्दर ले आओ।

लक्ष्मण—जैसी आपकी आज्ञा।

राम—अथवा तुम रुक जाओ।

यह सीता स्वयं जाएं और माँ की तरह सस्नेह भरत का सत्कार करके उन्हे भीतर ले आए। यह सीता जो ओस की बूँदों से भरे नील कमल की तरह आँखो वाली है और जिन आँखो से स्वतः प्रेमाश्रु की धारा वर्षा की झड़ी की तरह बह रही है। (१३)

सीता—जैसी पतिदेव की आज्ञा । (उठ कर, घूम कर और भरत को देख कर) अरे, मुझसे पहले ही भीतर से आर्यपुत्र बाहर कैसे आ गए ? नहीं, नहीं । यह तो केवल आकृति की समता है ।

सुमन्त्र—अरे, यह तो वहू है ।

भरतः—क्या, यह पूज्या जनक तनया सीता है ?

यह वही दीप्तिमान् नारी रूप तेज है, जो खेत को जोतते समय पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जो राजर्षि जनक की तपस्या का ज्वलन्त उदाहरण है । (१४)

आर्ये, मैं प्रणाम करता हूं । मै भरत हूं ।

सीता—(अपने मन में) केवल आकृति ही नही, आवाज भी वैसी ही है । (प्रकट रूप मे) वत्स, चिरजीवी वनो ।

भरत—कृतकृत्य हो गया ।

सीता—आओ वत्स, अपने भाई की इच्छा को पूरी करो ।

सुमन्त्रः—राजकुमार, आप जाइए ।

भरत—तात, इस समय आप क्या करेंगे ?

सुमन्त्र—मैं वाद मे आऊँगा क्योंकि महाराज की मृत्यु की सूचना जब से राम को मिली है, इसके वाद उनसे यह मेरी पहली भेंट है । (१५)

भरत—ऐसा ही हो । (राम के पास जाकर) आर्य, मैं प्रणाम करता हूं । मैं भरत हूं ।

राम—(प्रसन्नता से) आओ, आओ, इक्ष्वाकु राजकुमार, कल्याण हो । तुम दीर्घ काल तक जीवित रहो ।

तुम किवाड की तरह अपनी चौड़ी छाती फैला कर अपनी विशाल-काय भुजाओं से मेरा आलिङ्गन करो । तुम शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान अपने आह्लादक मुख को ऊपर उठाओ तथा शोक की ज्वाला मे जलते हुए मेरे हृदय को शीतल करो । (१६)

भरत—मैं कृतकृत्य हुआ ।

(५) मूल

सुमन्त्रः—(उपेत्य) जयत्वायुष्मान् ।

रामः—हा तात !

गत्वा पूर्वम् स्वसैन्यैरभिसरिसमये ख समानैर्विमानै
विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणा सुराणाम् ।
स श्रीमास्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्त
स्वर्गस्थः साम्प्रत कि रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रै र्नरेन्द्रः ॥
(१७)

मन्त्रः—(सशोकम्)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं
भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
वहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं
गुण इव वह्वपराद्धमायुषा मे ॥ (१८)

सीता—रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।

रामः—मैथिलि ! एष व्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण आपस्तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्य. ।

भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूषयिष्ये । अहमेव यास्यामि । (कलश गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः ।

रामः—(आचम्य) मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

सीता—आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः ।.

रामः—सुष्ठु खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु । तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः ।

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥ (१९)

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! मा मैवम् ।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं
न वत्स दर्पान्न भयान्न विभ्रमात् ।

कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते
कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥ (२०)

सुमन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क्व तिष्ठतु ?

रामः—यत्र मे मात्राभिहितं, तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

अपि सुगुण ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च ।
सुपुरुष पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद भरतमार्तम् पश्य तावद् यथावत् ॥ (२१)

शब्दार्थ—उपेत्य = पास जाकर । पूर्वम् = पहले । स्वसैन्यैः = अपने सैनिकों के साथ । अभिमरिसमये = देवताओं की सहायतार्थ जाने के समय में । खम् = आकाश में । समानैः = तुल्य । विमानैः = वायुयान के द्वारा विख्यातः = सुप्रसिद्ध । यः = जो व्यक्तिविशेष । विमर्दे = युद्ध में । बहुशः = अनेक बार । सासुराणाम् = असुरों के सहित । सुराणाम् = देवताओं के श्रीमान् = राजा दशरथ । त्यक्तदेहः = शरीर छोड़ कर । दयितम् = प्रेमी जीव । स्नेहवन्तम् = अनुराग शाली । साम्प्रत = अब । रमयति = प्रसन्न होते होगे । पितृभिः = पितरों के साथ । नरेन्द्रः = राजा दशरथ । प्रवासम् = वन यात्रा को । भरतविषादम् = भरत के दुःख को । अनाथताम् = अशरणता को । बहुविधम् = नाना रूप वाले । अनुभूय = अनुभव करके । दुष्प्रसह्यम् = कठिनता से सहने योग्य । बह्वपराद्धम् = बहुत से दोषों से युक्त । आयुषा = जीवन । मे = मेरा । रोदयति = रुला रहे है । व्यवस्थापयामि = स्वाभाविक स्थिति में कर रहा हूं । आत्मान = अपने आपको । आपः = जल । न्याय्यम् = समुचित । क्रमेण = छोटे के अनुसार । शुश्रूषयिष्ये = परिचर्या या सेवा करूंगा । यास्यामि = जाऊंगा । विशीर्यते = छिन रहा है । व्यापारः = कार्य । इह = वन मे । तत्रस्थः = अयोध्या में स्थित । स्थास्यामि = रहूंगा । कर्मणा = राज्य पालन रूपी कर्तव्य के साथ । नाम्ना एव = नाम से ही । भवतः = आपका । कृतरक्षम् = सुरक्षित । कैकेयीमातः = भरत । नियोगात् = आज्ञा से । वत्स = तात । दर्पात् = अभिमान से । विभ्रमात् = बुद्धि के विनाश

। नीचपथे = राज्य स्वीकृति के रूप मे पिता की आज्ञा न मानने वाले मार्ग र। प्रवर्तते = चल रहे हो। मात्राभिहित = माता के द्वारा कहा गया है। णे = घाव पर। प्रहर्तुम् = चोट पहूंचाना। सुगुण = हे अच्छे गुणों वाले। मूतिः = उत्पत्ति। निभृतधीमान् = अचचल बुद्धि वाले सुपुरुप = हे अच्छे नुष्य। मातृदोष: = जननी के द्वारा कियो गया अपराव। वरद = हे चाही ई वस्तु को देने वाले। आर्तम् = पीड़ित। यथावत् = सही रूप में।

अन्वय—य पूर्वम् सासुराणाम् सुराणाम् विमर्दे अभिसरिसमये स्वसैन्यैः समानैः विमानैः खम् गत्वा स स इति बहुशः विख्यात। स श्रीमान् त्यक्तदेहः नरेन्द्र. दयितम् अपि स्नेहवन्तम् भवन्तम् विना स्वर्गस्थ साम्प्रतम पितृभिः सह नरेन्द्रैः रमयति किम्। (१७)

अन्वय नरपतिनिधनम् भवत्प्रवासम् भरतविषादम् कुलस्य अनाथताम् बहुविधम् दुष्प्रसह्यम् अनुभूय मे आयुषा गुणे बहु अपराद्धम् इव। (१८)

अन्वय—इह देहेन स्थास्यामि, तत्र कर्मणा स्थास्यामि। भवतः नाम्ना एव राज्य कृतरक्षं भविष्यति। (१९)

अन्वय—वत्स, अहम् पितुः नियोगात् वनम् आगत.। दर्पात् न, भयात् न, विभ्रमात् न। न. कुलम् च सत्यधनम्, ते ब्रवीमि, भवान् नीचपथे कथम् प्रवर्तते। (२०)

अन्वय—सुगुण, त्वत् प्रसूतिः मम अपि प्रसूतिः। स खलु निभृतधीमान् ते पिता मे पिता च। सुपुरुष, पुरुषाणाम् मातृदोषः न दोषः। वरद, तावत् आर्तम् भरतम् यथावत् पश्य। (२१)

हिन्दी अर्थ

सुमन्त्र—(पास जाकर) आप दीर्घायु की जय हो।
राम—हा तात.

आपके साथ जो राजा दशरथ पहले देवासुर संग्रामो मे देवो की सहायता के लिए स्वर्ग जाते थे। उस यात्रा मे आपके विमान देव विमानों के समान होते थे। उस युद्ध में महाराज की विजय पर लोग आदर सम्मान प्रकट करते थे। वे ही राजा दशरथ अब मृत्यु के बाद आप

प्रेमी और स्नेही के बिना स्वर्ग में अपने अन्य पूर्वज राजाओं के क्या आनन्द पाते होंगे। (१७)

सुमन्त्र—(दुःखपूर्वक) महाराज की मृत्यु, आपका वनवास, भरत की पी[ड़ा] परिवार का रक्षकहीन होना आदि अनेक प्रकार के कष्टों को दि[खा] कर मेरी लम्बी उम्र ने गुणों के साथ दोष ही अधिक दिए हैं। (१[८])

सीता—तात रोते हुए पतिदेव को और भी अधिक रुला रहे हैं।

राम—सीते, यह मैं अपने आपको सँभाल रहा हूँ। वत्स लक्ष्मण, जरा पानी तो लाओ।

लक्ष्मण—जैसी आपकी आज्ञा।

भरत—आर्य, यह उचित नहीं है। छोटा होने के कारण बारी तो मेरी है। मैं ही जल लाऊँगा। (कलश लेकर, बाहर जाकर, पुनः अन्दर आकर) यह जल है।

राम—(आचमन करके) सीते, अब तो लक्ष्मण का काम छिन रहा है।

सीता—पतिदेव, इसे भी तो सेवा करनी चाहिए।

राम—ठीक है। यहाँ वन में लक्ष्मण सेवा करे और वहाँ अयोध्या में भरत।

भरत—आर्य प्रसन्न होइए।

मैं यहाँ पर शरीर से रहूँगा तथा वहाँ तो केवल मेरा प्रबन्ध रहेगा राज्य की रक्षा तो आपके नाममात्र से ही हो जायेगी। (१९)

राम—हे वत्स भरत, ऐसा मत कहो।

हे वत्स, मैं पिता की आज्ञा से वन में आया हूँ। न तो मैं अभिमान से यहाँ आया हूँ, न भय से अथवा न चित्त के पागलपन से। हमारा रघुकुल सत्य के लिए प्रसिद्ध है, यह मैं तुमसे कह रहा हूँ। इसे जानते हुए भी तुम निम्न पथगामी क्यों बन रहे हो। (२०)

सुमन्त्र—तो फिर अब राज्याभिषेक किसका होना चाहिए?

राम—उसी का होवे, जिसके लिए जननी ने कहा है।

भरत—आप प्रसन्न होइए। आर्य, अब घाव पर नमक न छिड़कें।

हे गुणज्ञ मेरा जन्म भी उसी कुल में हुआ है, जिसकी आप शोभा हैं। मेरे पिता भी वे ही प्रशस्त बुद्धि वाले हैं, जिनके आप प्रशंसा

है। हे श्रेष्ठ पुरुष, मनुष्यों में माता के अपराध को अपराध नहीं माना जाना चाहिए। हे वर देने वाले, दुःखी भरत की ओर न्यायोचित दृष्टि से देखें। (२१)

मूल

-आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः। किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते।

-मैथिलि !

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिम् समवाप्य लोके
धिग् भो विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ (२२)

वत्स कैकेयीमातः !

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातेर्गुणैर्निर्जितः।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुम् न युक्तं त्वया
किन्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥(२३)

भरतः—यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप पादमूले।

रामः—मैवं नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥ (२४)

भरतः—हन्त अनुत्तरमभिहितम्। भवतु समयतस्ते राज्यं परिपालयामि।

रामः—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दश वर्षान्ते प्रतिगृहीतुमिच्छामि।

रामः एवमस्तु।

भरतः—आर्य ! श्रुतम्। आर्ये ! श्रुतम्। तात ! श्रुतम्।

सर्वे—वयमपि श्रोतारः।

भरतः—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

रामः—वत्स ! किमिच्छसि ? किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि

भरतः—पादोपभुक्ते तव पादुके मे
एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना ।
यावद् भवानेष्यति कार्यसिद्धिम्
तावद् भविष्याम्यनयोर्विधेयः ॥ (२५)

शब्दार्थ—अतिकरुणम् बहुत ही दीन होकर । मन्त्रयते = कह रहा है । चिन्त्यते = विचार किया जा रहा है । सुरलोकयात = स्वर्ग गए हुए । आत्मजविशिष्टगुण.=पुत्रों में विशेष गुण वाला । ईदृग्विधम्=इस प्रकार का । गुणनिधि = गुणों के खजाने । समवाप्य = प्राप्त करके । धिग् = धिक्कार है । विधेः = भाग्य के । पुरुषोत्तमेषु = मनुष्यों में श्रेष्ठ पूज्य पिता में । यत्सत्यम् = सचमुच में । परितोषितः = सन्तुष्ट । निष्कलमषात्मा - निष्पाप बुद्धि वाले । भवान् आप भरत । वशानुगः = वशीभूत हुआ । भवतः = आपके । ख्यातं = सुप्रसिद्ध । निर्जितः = पराजित कर दिया है । अनृतं = मिथ्या । युक्तम् - उचित । किञ्च = और । उत्पाद्य = उत्पन्न कर के । भवद्विधम् = तुम्हारे जैसा । भवतु = होवे । ते = तुम्हारा । मिथ्याभिवादी = झूठ बोलने वाला । यावद्=जब तक । भवन्नियमावसानम् = आपके वनवास की समाप्ति । भवेयम् = रहूँगा । इस = यहाँ पर । ते=आपके । पादमूले = चरणों में । मैवम् = ऐसा मत कहो । स्वसुकृतैः = अपनी सत्यवादिता जन्य पुण्य से । अनुयातु = प्राप्त करे । सिद्धिम् = सफलता को । मे = मेरी । शापितः = सौगन्ध । परिरक्षसि = पालोगे । चेत् = यदि । हन्त = हाय । अनुत्तरम् = उत्तर देने से रहित । अभिहितम् = कहा गया । भवतु - ठीक है । समयतः = शर्त के अनुसार । समय. = शर्त । निक्षिप्तम् = धरोहर रूप में रखा गया । प्रतिग्रहीतुम् = देना । श्रुतम् - सुन लिया । हर्तुम् - प्राप्त करना । अनुष्ठास्यामि = करूँ । पादोपभुक्ते = चरणों में पहनी हुई । पादुके = दो खड़ाऊ । प्रणताय = झुके हुए । मे = मुझे । मूर्ध्ना = सिर से । एष्यति = आयेंगे । अनयोः = इन दोनों चरण पादुकाओं का । विधेयः = आज्ञाकारी ।

अन्वय—सुरलोकयात त नृपतिम् चिन्तयामि, येन अयम् आत्मजविशिष्टगुणः न दृष्टः । लोके ईदृग्विधं गुणनिधिम् समवाप्य पुरुषोत्तमेषु यदि विधेः बलम् । (तर्हि) भो धिक् । (२२)

अन्वय—भवता यत्सत्यम् परितोषितः अस्मि, भवान् निष्कलमषात्मा,
तैः भवतः गुणैः निर्जितः। त्वद् वाक्यस्य वशानुगः अस्मि। किन्तु एतत्
तेः वचः तत् त्वया अनृत कर्तुम् न युक्तम्। किञ्च भवद्विधम् उत्पाद्य ते
ा मिथ्याभिधायी भवतु। (२३)

अन्वय—यावत् भवन्नियमावसानं भविष्यति, नृप, तावत् इह ते पादमूले
यम्। मैवम नृपः स्वसुकृतैः सिद्धिम् अनुयातु, चेत् स्वराज्य न परिरक्षसि,
ापितः। (२४)

अन्वय—मूर्ध्ना प्रणताय मे एते पादोपभुक्ते तव पादुके प्रयच्छ। यावत्
भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति, तावत् अनयोः विधेयः भविष्यामि। (२५)

हिन्दी अर्थ

सीता—पतिदेव, भरत बहुत दीनता से बोल रहे है। आप अब क्या सोच रहे है?

राम—सीते,

मैं स्वर्ग लोक मे गए हुए अपने उन पिताजी के विषय में सोच रहा हूँ, जिन्होंने अपने अनुपम इस पुत्र रत्न को नही देखा। संसार में इस प्रकार के गुणसागर पुत्र को प्राप्त करके भी पिताजी की मृत्यु हो गई, तो भाग्य की इस विडम्बना को धिक्कार है। (२२)

हे वत्स भरत,

तुमने मुझे सचमुच मे प्रसन्न कर दिया। तुम्हारी अन्तरात्मा अति पवित्र है। तुम्हारी बात को मै मानता हूँ। तुम्हारे सुविख्यात गुणो ने मुझे जीत लिया है। ये सारी बाते ठीक है। किन्तु तुम्हारे द्वारा पिताजी के इस वाक्य को कि "भरत राजा बने" मिथ्या करना समुचित नहीं है। तुम्हारे जैसे इतने अच्छे पुत्र को उत्पन्न करके तुम्हारे पिता झूठ बोलने वाले हों, यह अच्छा नही है। (२३)

भरत—हे महाराज राम, जब तक आपका यह वनवास समाप्त नहीं होगा, तब तक मैं भी यही आपके चरणो की सेवा में रहूँगा।

राम—ऐसा मत कहो। राजा दशरथ को अपने पुण्य से सिद्धि भोगने दो। यदि तुम अपना राज्य नही सँभालो, तो तुम्हे मेरी शपथ है। (२४(

भरत—हाय, आपने तो मुझे अनुत्तर सा कर दिया। अच्छा, मैं एक शर्त प
आपके राज्य का पालन करूँगा।

राम—वत्स, वह कौन सी शर्त है।

भरत—मेरे हाथ में धरोहर रखा हुआ आपका राज्य चौदह वर्ष के अन्त
पुनः आपको लौटाना चाहता हूँ।

राम—ऐसा ही होवे।

भरत—आर्य, सुना। हे पूज्ये, सुना। तात, सुना आपने।

सभी—हम लोग साक्षी हैं।

भरत—आर्य, मैं एक वरदान और लेना चाहता हूँ।

राम—वत्स, क्या चाहते हो? मैं क्या दूँ? मैं क्या करूँ?

भरत—आपके चरणो में मस्तक झुकाने वाले मुझे आपके पाँवों में पह
हुई ये खड़ाऊ दे दें। जब तक आप अपना वनवास पूरा करके लौटें
तब तक मैं इनका सेवक बन कर आपका राज्य भार सँभालूँगा। (२५

(७) मूल

रामः—(स्वगतम्) हन्त भोः।

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम्॥ (२६)

सीता—आर्यपुत्र! ननु दीयते खलु प्रथमयाचनं भरताय।

रामः—तथास्तु। वत्स! गृह्यताम्।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा) आर्य!
अत्राभिषेकोदकमावर्जयितुमिच्छामि।

रामः—तात! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वम् क्रियताम्।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्।

भरतः—(आत्मगतम्) हन्त भोः!

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः।
भ्रातृणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः॥ (२७)

रामः—वत्स ! कैकयीमात. ! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

सीता—हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः ।

रामः—अलमतिस्नेहेन । अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

भरतः—आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।

हम् = क्या (खेद व आश्चर्य सूचक अव्यय, जो स्त्री पात्रों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है)। आशावन्तः = राम के आने की आस लगाए हुए। पुरे = अयोध्या नगर में। पौराः = नागरिक। स्थास्यन्ति = विद्यमान होंगे। त्वद्दिदृक्षया = आपके देखने की इच्छा से। प्रीतिम् अनुराग को। करिष्यामि = करूँगा। प्रमादस्य = कृपा अर्थात् चरण पादुकाएँ। प्रयतिष्ये = प्रयत्न करूँगा। आरोहतः = दोनों चढते हैं। अनुयात्र = पीछे चलने वाले।

अन्वय—मया सुचिरेण अपि कालेन किञ्चित् यश. अर्जितम्। अद्य भरतेन अचिरेण एव कालेन सञ्चितम्। (२९)

अन्वय—अहम् स्वजनस्य श्रद्धेयः, पौरजनित्तः, लोकस्य दृष्टिक्षमः, स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वित. सुतः, गुणशालिनां भ्रातृणां बहुमतः, कीर्तेः महत् भाजनम्, गुणवता संवादेषु कथाश्रय., नवप्रियाणा प्रियः जातः। (२७)

अन्वय – पुरे पौराः आशावन्त. त्वद्दिदृक्षया स्थास्यन्ति। त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् तेषां प्रीति करिष्यामि। (२८)

हिन्दी अर्थ

राम— (स्वगत) अहा,

मैंने बहुत दिनों में जितना यश संचित किया था, भरत ने उतना यश अल्प काल में ही अर्जित कर लिया है। (२९)

सीता—आर्यपुत्र, क्या भरत को आप प्रथम बार मांगी गई वस्तु नहीं देंगे।

राम—अवश्य। कुमार, यह लो।

भरत—बड़ी कृपा। (लेकर) आर्य, इन पर राज्याभिषेक के जल को छिड़कना चाहता हूं।

राम—तात, जो भरत को प्रिय हो, वह सभी किया जाए।

सुमन्त्र—जैसी आपकी आज्ञा।

भरत—(मन में) अहा,

अब मैं अपने बान्धवों का विश्वास पात्र बना। नगरवासियों का प्रेम पात्र, संसार की ओर आंख उठा कर देखने योग्य, स्वर्गवासी महाराज दशरथ का प्रिय एवं अच्छे गुण वाला पुत्र, गुणी भाइयों का सम्मानी,

प्रशसा का बहुत बडा आश्रय, गुणीजनों की पारस्परिक वार्ता का विषय और सफल मनोरथ प्रजा का प्रिय बन गया हूँ। (२७)

राम—हे वत्स भरत, राज्य की थोड़े समय के लिए भी उपेक्षा नही करनी चाहिए। अतः तुम आज ही विजय के लिए वापस लौट जाओ।

सीता—अरे, क्या, आज ही कुमार भरत चले जायेगे।

राम—अधिक स्नेह मत बताओ। आज हो भरत राज्य की रक्षा के निमित्त वापस जाये।

भरत--आर्य, मै आज ही चला जाऊँगा।

प्रजा के लोग आशा लगाए हुए आपको देखने की इच्छा से अयोध्या मे प्रतीक्षा कर रहे होगे। मैं जाकर उन्हे यह आपकी कृपा अर्थात् चरण पादुकाएँ दिखाऊँगा और उनको प्रसन्न करूँगा। (२८)

सुमन्त्र--हे दीर्घायु, अब मै क्या करूँ?

राम—तात, महाराज की भाँति भरत का पालन करे।

सुमन्त्र—यदि जीवित रहा, तो प्रयास करूँगा?

राम—वत्स भरत, मेरे सामने ही रथ पर चढो।

भरत—जो आज्ञा।

(दोनो भरत और सुमन्त्र रथ पर वैठते हैं)

राम—हे सीते, जरा इधर तो आओ। वत्स लक्ष्मण, तुम भी इधर आओ। आश्रम के द्वार तक हम भी भरत के पीछे चलेगे।

(इस प्रकार सभी निकल जाते है)

चौथा अक समाप्त।

पञ्चम अंक

(१) मूल

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

सीता—आर्ये ! उपहारसुमन आकीर्णः सम्मार्जित आश्रमः । आश्रमपदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः । तद् यावदार्यपुत्रो नागच्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि ।

तापसी—अविघ्नमस्य भवतु ।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः— (सशोकम्)

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरीं
मुद्यम्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः ।
रक्षार्थम् भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भो नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति ॥ (१)

(विमृश्य) ईदृशमेवैतत् । यावदिदानीमीदृगशोकविनोदनार्थमवस्थाकुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि । तत् क्व नु खलु गता वैदेही ? (परिक्रम्यावलोक्य) अये इमानि खलु प्रत्यग्राभिषिक्तानि वृक्षमूलानि अदूरगतां मैथिलीं सूचयन्ति । तथाहि—

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्तं सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः ।
स्थलमभिपतंत्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥ (२)

(विलोक्य) अये इयं वैदेही । भोः ! कष्टम् ।

यो ऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि
स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।

कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यम्
समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ (३)
(उपेत्य) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ?

सीता—हम् आर्यपुत्रः ! जयत्वार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति)

रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ?

सीता—शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः । किमेतत् ?

रामः—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता ।

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे
तथैव तावद् हृदयव्रणो मे ।
नानाफलाः शोकशराभिघाता
स्तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥ (४)

सीता—आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ?

शब्दार्थ—उपहारसुमनः=देवताओं के लिए चढ़ाए जाने वाले पुष्प। आकीर्णः=परिपूर्ण। सम्मार्जितः= स्वच्छ बना। आश्रम पदविभवेन=तपोवन में प्राप्त पुष्प आदि सम्पदा से। अनुष्ठितः=किया है। देवसमुदाचारः=देव-पूजा। बालवृक्षान्=छोटे पेड़ों को। उदकप्रदानेन=जल से सींचने के द्वारा। अनुक्रोशयिष्यामि=प्रसन्न करूंगी। अविघ्नम्=सानन्द। अस्य=सिंचन कार्य का। त्यक्त्वा=छोड़ कर। तां=उस (अयोध्या) को। गुरुणा=पिता दशरथ के द्वारा। मया=मुझ राम के द्वारा। रहिता=सूनी बनी। रम्यां=सुन्दर। पुरीम् =नगरी को। उद्यम्य=प्रयत्नपूर्वक सम्पादित करके। अखिलं=सम्पूर्ण। मत्सन्निधौ= मेरे पास। आगतः=(भरत) आया। गुणनिधिः=गुणों का समूह भरत। तत्र=उसी सूनी अयोध्या में। सम्प्रेषितः=भेजा गया। नृपतेः=राजा का। धुरं=भार। सुमहती=बहुत भारी। एकः=अकेला भरत। समुत्कर्षति= ढो रहा है। विमृश्य=विचार कर के। ईदृशशोकविनोदनार्थम्= इस प्रकार के अर्थात् भरत वियोग जन्य दुःख को दूर करने के लिए। अवस्थाकुटुम्बिनीम्= सभी दशाओं मे साथ रहने वाली (कुटुम्ब धातु चुरादि गण, आत्मनेपदी की अकर्मक धातु है, जिसका अर्थ होता है "धारण करना" इसके लट्, प्र०पु०,

एक वचन में "कुटुम्बयते" रूप बनता है) । प्रत्यग्राभिषिक्तानि=अभी-अभी सींचे गए । वृक्षमूलानि=वृक्षों की जड़ें । अदूरगतां=पास में ही । वृक्षावर्ते=पेड़ के थाले (आलवाल) में । सफेनम्=झाग के सहित । अवस्थित= भूमि में गया हुआ । तृषितपतिता:=प्यासे होने के कारण जल पीने को आए हुए । क्लिष्ट=कलुषित अर्थात् मटमैले । खगा:=पक्षी । स्थलं=सूखी जगह पर । अभिपतन्ति=दौड़ कर जा रहे हैं । कीटा:=कीड़े । जलपूरिते=पानी से भरे । नववलयिन:=नई गोलाकार रेखा वाले । मूले=जड़ भाग में । जलक्षयरेखया=पानी के सूख जाने के चिह्न से । श्राम्यति=थक जाता है । दर्पणे=काच को उठाने में । नैति=न+एति=नहीं प्राप्त करता है । खेद=थकान को । वहन्त्या:=लेते हुए । कष्टं=दु:ख । स्त्रीजनसौकुमार्यम्=ललना स्वभाव की सुलभ कोमलता । कठिनीकरोति=कठोर हो जाती है । धर्मविघ्न:= अनुष्ठान में बाधा । आस्यताम्=बैठो । प्रतिवचनार्थिनीम्=कुछ पूछने की इच्छुक । शोकशून्यहृदयस्य=दुःख से सूने हृदय वाले । मुखराग:=आनन का वर्ण । स्थाने=उचित विषय में । कृतान्तशल्याभिहते = यमराज के बाण तुल्य यथा वाले । हृदयव्रण:=पिता के वियोग के दुःख वाला मानसिक खेद । नानाफला:=अनेक प्रकार के फल वाले । शोकशराभिघाता:=दुःख रूपी बाणों के प्रहार । क इव=किस प्रकार का । सन्ताप:=शोक ।

अन्वय—गुरुणा मया च रहिताम् ताम् रम्याम् अयोध्याम् पुरीम् त्यक्त्वा, अखिलम् मम अभिषेकम् उद्यम्य मत्सन्निधौ आगतः अपि गुणनिधिः भरतः पुनः तत्र एव रक्षार्थम् सम्प्रेषितः । एकः नृपतेः सुमहतीम् धुरं समुत्कर्षति, कष्टम् भोः । (१)

अन्वय—सलिलम् वृक्षावर्ते अवस्थितम् सफेनम् भ्रमति । तृषितपतिताः एते खगाः क्लिष्टम् जलम् न पिबन्ति । बिले जलपूरिते आर्द्रा: कीटाः स्थलम् पतन्ति । वृक्षाः मूले जलक्षयरेखया नववलयिनः । (२)

अन्वय—य अस्या: करः दर्पणे अपि श्राम्यति, स कलशम् वहन्त्याः खेदम् न एति । कष्टम् (यत्) वनम् लताभिः समम् स्त्रीजनसौकुमार्यम् कठिनीकरोति । (३)

अन्वय—कृतान्तशल्याभिहते मे शरीरे हृदयव्रणः तावत् तथा एव । नानाफला: शोकशराभिघाता: तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति । (४)

हिन्दी अर्थ

(सीता और तापसी का प्रवेश)

सीता—आर्ये, आश्रम में विखरे हुए पूजा के फूलो को साफ कर दिया। आश्रम सुलभ फल फूल आदि से देव पूजा भी कर ली। तो अब जब तक पतिदेव नही आते हैं, मैं इन छोटे पौधों को जल से सीच लूँ।

तापसी—तुम्हारा यह कार्य विना वाधा के होवे।

(इसके बाद राम आते हैं)

राम—(खेद पूर्वक) पिताजी और मुझ से रहित उस सुन्दर अयोध्या को छोड कर, मेरे अभिषेक की सारी सामग्री साथ लेकर भरत मेरे पास आया। मैंने पुन. उस गुणों के आगार भरत को राज्य के पालन के लिए वही पर भेज दिया। बड़े कष्ट की बात है कि पिताजी के राज्य के भारी भार को वह अकेला ही खेच रहा है। (१)

(सोच कर) यह राजकार्य ऐसा ही है। तो अब मैं ऐसी चिन्ताओ से मुक्ति पाने के लिए मेरी सहचरी सीता को देखूँ। सीता अभी कहाँ गई होगी ? (घूम कर और देख कर) अरे, ये तत्काल सीचे गए पौधो के थाल बता रहे है कि सीता यही कही पास मे है। क्योकि—पेड़ो के थालो मे पडा झाग वाला जल अभी भी घूम रहा है और प्यासे पक्षी पास आकर भी इस मैले पानी को नही पी रहे हैं। जल से भीगे कीड़े अपने विलो से भाग कर वाहर आ रहे हैं तथा पेड़ो की जड़ों मे कई गोलाकार रेखाए पड गई है। (२)

(देख कर) अरे, सीता तो यह रही। हाय, बड़ा दु ख है।

इसका हाथ कभी दर्पण उठाने मे भी थक जाता था, वही हाथ अब घडा उठाने मे भी नही थकता। वनवास ने लताओ के साथ नारी की सुकुमारता को भी कठोरता मे वदल दिया है। (३)

(पास जाकर) सीते, क्या तुम्हारा तप बढ रहा है ?

सीता—अरे, पतिदेव। आर्यपुत्र की जय हो।

राम—सीते, यदि तुम्हारे धार्मिक कार्य मे कोई रुकावट न हो, तो वैठ जाओ।

सीता—जैसी आपकी आज्ञा। (वैठती है)

राम—सीते, लगता है जैसे तुम कुछ पूछना चाहती हो ? क्या वात है ?

सीता—आपके मुख से लग रहा है मानो आपका हृदय किसी दु:ख से सना हो रहा है। यह क्या है ?

राम—सीते, तुम्हारा सोचना नितान्त उचित है।

यमराज के वाणों के प्रहार होने वाले मेरे शरीर पर हृदय का घाव तो अभी वैसा ही है। इसी बीच अनेक फल वाले दु:ख रूपी बाणों के आघात उसी स्थान पर बार-बार गिर रहे हैं। (४)

सीता—आखिर आर्यपुत्र को किस बात की चिन्ता है ?

(२) मूल

रामः—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसवत्सरश्राद्धविधिः।
कल्पविशेषेणनिवपनक्रियामिच्छन्ति पितरः। तत
कथ निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते। अथवा-
इच्छन्ति तुष्टि खलु येन केन
त एव जानन्ति हि ता दशा मे।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुम्
तातस्य रामस्य च सानुरूपाम्॥ (५)

सीता—आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्ध्या, अवस्थानुरूप फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः। एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति।

रामः—मैथिलि !
फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।
स्मारितो वनवास च तातस्तत्रापि रोदिति॥ (६)
(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः)

रावणः—एष भोः !
नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा
खरवधकृतवैर राघवं वञ्चयित्वा।
स्वरपदपरिहीणा हव्यधारामिवाहं
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि॥ (७)
(परिक्रम्यावो विलोक्य)
इदं रामस्याश्रमपदद्वारम्। यावदवतरामि। (अवतरति)
यावदहमत्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यामि। अहमतिथिः।
कोऽत्र भोः !

रामः—(श्रुत्वा) स्वागतमतिथये ।

रावणः–साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

रामः—(विलोक्य) अये भगवान् । भगवन् ! अभिवादये ।

रावणः स्वस्ति ।

रामः—भगवन् ! एतदासनमास्यताम् ।

रावणः—(आत्मगतम्) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन ।
(प्रकाशम्) बाढम् । (उपविशति)

रामः—मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य)
इमा आपः ।

रामः—शुश्रूषय भगवन्तम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

रावणः—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा) भवतु भवतु । इयमेका
पृथिव्या हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ (८)

रामः—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये ।

रावणः—अयि, छाया परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि । वाचानुवृत्तिः
खल्वतिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि । आस्यताम् ।

रामः—बाढम् । (उपविशति)

रावणः—(आत्मगतम्) यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि
(प्रकाशम्) भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि । साङ्गोपाङ्ग
वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च ।

रामः–कथं कथं श्राद्धकल्पमिति।

शब्दार्थ— श्वः=कल । तत्रभवतः=पूज्य । तातस्य=पिता दशरथ की । अनुसंवत्सर=प्रत्येक वर्ष मे किया जाने वाला । श्राद्धविधिः=श्राद्धकर्म । कल्पविशेषेण=विशिष्ट वस्तु दान के द्वारा । निवपनक्रियाम्=पिण्ड दान के कार्य को । पितरः = मृत पूर्वज । निर्वर्तयिष्यामि = पूर्ण करूँगा । चिन्त्यते=विचार किया जा रहा है । तुष्टिम् = तृप्ति को । येन केन = अपनी दशा के अनुरूप । त एव = वे ही । मे = मेरी । रामस्य = स्वयं के । सानुरूपाम् = अपने योग्य ।

ऋद्ध्या = ऐश्वर्य के साथ। फलोदकेन = फल-फूल और जल से। बहुमं = अधिक प्रिय। दर्भेषु = कुश घास पर। नः = हमारे। स्मारित.=याद दि जायेगा। रोदित=रोएँगे। परिव्राजकवेषः=साधु के रूप मे। नियतम्=जितें राम को। अनियतात्मा=अजितेन्द्रीय मैं रावण। रूपम् = वेश को। खर कृतवैरम् = खर नामक राक्षस को मारने के कारण उत्पन्न शत्रु को। व यित्वा=ठक कर। स्वरपदपरिहीणा=स्वर और शब्द के विभाग से रहि हव्यधाराम्=हवि और घी की धारा को। हर्तु कामः=अपहरण की इच्छा वाला। प्रयामि=जा रहा हूं। अधः=नीचे। अवतरामि=नीचे उतरू। प्रति समुदाचारम्=अभ्यागतोचित व्यवहार को। अनुष्ठास्यामि = करूंगा। सानु स्वभाव सुन्दर। विशेपितम्=और अधिक सुन्दर किया है। रूप=आकृति। स्वरेण=शब्द के द्वारा। आज्ञप्त. = आज्ञा दिया गया। वाढम् = ठीक। पाद्यम् = पाव धोने के लिए जल। भगवते = महानुभाव के लिए। शुश्रूषय=सेवा करो। मायाप्रकाशनपर्याकुलः = सीता द्वारा रावण के पैर छूने पर उस अजितेन्द्रिय के रोमाच आदि से सन्यासी का कपट भेद खुल जाने से व्याकुल। भूत्वा = होकर। अरुन्धती = वसिष्ठ पत्नी के तुल्य पतिव्रता। भर्ता = पति। सत्कृत.=पूजित। कथ्यते=कहे जाते हो। भवान्=आप। आनय=लाओ। लङ्घयामि=छूने दूंगा। वाचानुवृत्ति.=अच्छी वाणी को कहना। पूजित = सम्मानित। समुदाचारम्=आचरण को। साङ्गोपाङ्गम्=अंग और उपाग के सहित। वेद के छ अग=शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। उपाग चार हैं = पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। अधीये = पढा हुआ हूँ। मानवीयं=मनु द्वारा प्रवर्तित। माहेश्वरं=महेश्वर द्वारा कथित। धर्मशास्त्र = धर्मानुशासन। योगशास्त्रं-पातजल उपजीव्य योगविद्या का रहस्य। वार्हस्पत्यम्=वृहस्पति द्वारा कथित। अर्थशास्त्र=अर्थनीति प्रतिपादन प्रधान-राजनीतिशास्त्र। मेधातिथे.=मेधातिथि नामक महर्षि का। न्यायशास्त्र=तर्कशास्त्र विशेष। प्राचेतस=वरुण द्वारा कथित। श्राद्धकल्प=श्राद्धविधान।

अन्वय—येन केन खलु तुष्टिम् इच्छन्ति, हि ते एव मे तां दशा जानन्ति। तथापि तातस्य च रामस्य सानुरूपा पूजा कर्तुम् इच्छामि। (५)

अन्वय—दर्भेषु नः स्वहस्तरचितानि फलानि दृष्ट्वा तातः वनवास स्मारितः च तत्रापि रोदिति। (६)

अन्वय—अनियतात्मा एतत् रूप ग्रहीत्वा नियतं खरवधकृतवैर राघवं
वा अह स्वरपदपरिहीणा हव्यधाराम् इव तां जनकनृपसुता हर्तुं कामः
। (७)

अन्वय—इयं हि पृथिव्या मानुषीणाम् एका अरुन्धती । यस्या भर्ता
वान् नारिभिः सत्कृतः कथ्यते । (८)

। अर्थ

–कल पिताजी का वार्षिक श्राद्ध दिवस है। पितर लोग सामर्थ्य के अनुसार अपना पिण्डदान चाहते हैं। उसे मैं किस प्रकार पूरा करूँगा, यही चिन्ता है।

अथवा—

वे जिस भाँति तृप्त होते है, होवें। क्योकि वे मेरी पूरी स्थिति को तो जानते ही है। फिर भी मैं पिताजी की प्रतिष्ठा तथा अपने सामर्थ्य के अनुरूप पितृश्राद्ध करना चाहता हूँ। (५)

सीता—आर्यपुत्र, बड़े वैभव के साथ पिताजी का श्राद्ध तो भरत करेंगे ही, आप भी अपनी अवस्था के योग्य फल-जल से श्राद्ध करें। पिताजी इसे ही पर्याप्त मान लेगे।

सीते,—

राम—कुशों पर हमारे हाथों से रखे फलो को देखते ही हमारे वनवास की याद आ जाने से पिताजी वहां पर भी रो देंगे। (६)

(इसके बाद संन्यासी के वेश में रावण का प्रवेश)

रावण—अरे यह,

राम ने खर दूषण का वध करके मेरे साथ वैर बढाया है। मैं आज उसे ठगने के लिए अविरक्त होकर भी विरक्त का रूप धारण करता हूँ। मैं सीता का हरण करने उस प्रकार जा रहा हूँ, जिस प्रकार स्वर तथा पद से अशुद्ध मन्त्रोच्चारण हवन की आज्यधारा को हर लेता है। (ऐसी मान्यता है कि मन्त्रदोष से दीयमान हव्यधारा को राक्षस ग्रहण कर लेते है।) (७)

(घूम कर तथा नीचे की ओर देख कर) यह राम के आश्रम के स्थान का द्वार है। तो मै नीचे उतरूं। (उतरता है) अब मैं अतिथि के योग्य आचरण करता हूँ। मैं अतिथि हूँ। अरे, यहां कौन है?

राम—(सुन कर) अतिथि का स्वागत है।

रावण—इसके स्वर ने रूप को और चमका दिया है।

राम—(देख कर) अरे भगवान् हैं। भगवान्, प्रणाम।

रावण—कल्याण हो।

राम—भगवान्, यह आसन है, बैठिए।

रावण—(मन में) इसके द्वारा मैं मानो आदेश दिया गया हूँ। (प्रक
अच्छा। (बैठता है)

राम—सीते महात्मा के लिए पाद्य जल लाओ।

सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा। (बाहर जाकर और प्रवेश करके)
जल है।

राम—महात्मा की सेवा करो।

सीता—जैसी आपकी आज्ञा।

रावण—(भेद खुलने के भय से हक्का-बक्का होकर) रहने दो, रहने दो। सचमुच मे यह अकेली सीता पृथ्वी पर स्त्रियों में अरुन्धती के समान पतिव्रता है, जिसके स्वामी होने के कारण स्त्रियाँ आपका यश गाती है। (८)

राम—तो फिर लाओ। मैं स्वय ही सेवा करूँगा।

रावण—अरे, छाया के समान सीता से सेवा का निषेध करने वाला मैं शरीर के समान आपसे कैसे ग्रहण करूँगा। सच्चा अतिथि सत्कार तो मीठे वचनों के स्वागत से होता है। मेरा सम्मान हो गया है। बैठिए।

राम—अच्छा। (बैठते हैं)

रावण—(स्वागत) तब तक मैं भी ब्राह्मण के अनुरूप कार्य करूँ। (प्रकट) अजी, मैं काश्यप गोत्र का हूँ। मैंने छहों अंग व चारों उपांगों के सहित वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योगशास्त्र, बृहस्पति का अर्थशास्त्र, मेधातिथि का न्यायशास्त्र और प्रचेता का श्राद्धकल्प इन सबका अध्ययन किया है।

राम—क्या कहा ? श्राद्धकल्प।

(२) मूल

रावणः—सर्वा. श्र तीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता किमेतत् ?

रामः—भगवन् ! अष्टाया पितृमत्तायामागम इदानीमेष ।

वण:—अलं परिहृत्य । पृच्छतु भवान् ।

म:—भगवन् ! निवपनक्रियाकाले केन पितृ स्तर्पयामि ?

वण:—सर्वम् श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।

म:—भगवन् ! अनादरतः परित्यक्तं भवति । विशेषार्थम् पृच्छामि ।

वण:—श्रूयताम् । विरूढेषु दर्भाः, ओषधीषुतिला, कलाय शाकेषु, मत्स्येषु महाशफरः, पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशुषु गाः खड्गो वा, इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

राम:—भगवन् ! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति ।

रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम् ।

रामः—भगवन् ! एष एव मे निश्चयः ।

उभयस्यास्ति सान्निध्य यद्येतत् साधयिष्यति ।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ (९)

रावणः—सन्ति । हिमवति प्रतिवसन्ति ।

रामः—हिमवतीति । ततस्ततः ।

रावणः—हिमवतः सप्तमे शृंगे प्रत्यक्षस्थाणुशिरःपतितगङ्गाम्बुपायिनो वैदूर्यश्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः, यैर्वैखानसवालखिल्यनैमिषीयादयो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति ।

तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते
हित्वा जरा खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः ।
तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवास
मावर्तिभिश्च विषयैर्न बलान् ध्रियन्ते ॥ (१०)

रामः—मैथिलि !

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च
विन्ध्य वन तव सखीर्दयिता लताश्च ।
वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु
दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥ (११)

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

रावणः—कौसल्यामातः ! अलमतिमनोरथेन । न ते मानुषैर्दृश्यन्ते ।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?
रावणः—अथ किम् ?
रामः—तेन हि पश्यतु भवान् ।
सौवर्णान् वा मृगास्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
(भिन्नो मद्वाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति) ॥ (१२)
रावणः—(स्वगतम्) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः ।
(प्रकाशम्) अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते । कौसल्या-मात
इहस्थमेव भवन्त पूजयति हिमवान् । एप काञ्चनपार्श्वः ।
रामः—भगवतो वृद्धिरेपा ।
सीता—दिष्ट्याऽऽर्यपुत्रो वर्वते ।
रामः—न न,
तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः ।
अर्हत्येप हि पूजाया लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ॥ (१३)

शब्दार्थ - श्रुतीः = वेदो को । अतिक्रम्य = छोड कर । स्पृहा=इच्छा अप्टाया = समाप्त हुए । पितृमत्ताया = पिता की जीवित स्थिति के आगम. = शास्त्र । अल परिहृत्य = मत छोडिए । निवपनक्रियाकाले=पिण्ड दा के समय मे । पितृन् = पितरो को । अनादरतः = अपमानपूर्वक दिया गया विशेपार्थम् = विशिष्ट वात को । विरूढेपु = उगने वालीवस्तुओं मे । दर्भाः = कुश घास । ओप धीपु = वनस्पतियो मे । कलाय = मटर । शाकेपु = सागो मे मत्स्येपु = मछलियो मे । महाशफरः=वड़ी फोठी मछली, जिसके शरीर चमक होती है । वार्ध्रीणस. = एक पक्षी, जिसकी गर्दन, सिर, पैर और प क्रमशः नीले, लाल, काले और श्वेत वर्ण के होते हैं, "नीलग्रीवो रक्तशी कृष्णपादः सितच्छदः । वार्ध्रीणसः स्यात् पक्षीश. ।" खड्गः = गैंडा विहिता. = निश्चित या विधान किए हुए । वा = अथवा । अवगतम्=जा गया । प्रभावसम्पाद्यम्=विशिष्ट तेजस्वियो द्वारा किया जाने योग्य । उभयर- =दोनो प्रकार से । सान्निध्यं=समीपता । साधयिष्यति=पूर्ण करेगा । तपसि= तप के । श्रान्ते=थक जाने पर । हिमवति= हिमालय पर । प्रतिवसन्ति=निवास करते है । शृ गे=शिखर पर । प्रत्यक्ष=साक्षात् वर्तमान । स्थाणु =शिव । पतित =गिरने वाले । अम्बुपायिनः=जल पीने वाले । वैदूर्य=लहसुनिया रत्न । श्याम-पृष्ठाः=काले रंग की पीठ वाले । पवनसमजवाः = हवा के समान वेग वाले । काचनपार्श्व = इस नाम वाले ।

वानप्रस=वानप्रस्थ । बाल-खिल्य=एक प्रकार के ऋषि, पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के रोम मे उत्पन्न ऋषि-समूह, जिनके शरीर का आकार अँगूठे के बराबर है, इस समूह में ६० हजार ऋषियों की गणना है और ये सब के सब बड़े तेजस्वी है । नैमिषीय=निमिषारण्य वासी । चिन्तितमात्रोपस्थित-विपन्नै=सोचने मात्र से आने वाले और मर जाने वाले । अभिवर्धयन्ति=सम्पन्न करते हैं । तर्पिता:=सन्तुष्ट बने । सुतफल=पुत्रजन्म के प्रयोजन को । हित्वा=नष्ट करके । जरां=बुढापे को । खम्=स्वर्ग मे । उपयान्ति=चले जाते हैं । दीप्यमाना=तेज से चमकते हुए । समुपयान्ति=प्राप्त करते हैं । आवर्तिभि=जन्म मरण के चक्र वाले । विषयै:=भोग विलास की वस्तुओ से । बलात्=जबर्दस्ती । ध्रियन्ते = खीचे जाते है । आपृच्छ=विदा ले लो । पुत्रकृतकान् = पुत्र तुल्य पाले जाने वाले । विन्ध्यं=विन्ध्य पर्वत से । सखी =सखियां बनी । दयिता =प्रिय (स्त्रीलिंग, द्वितीया, बहुवचन) । लता: = वल्लरियों से । वत्स्यामि = निवास करूगा । हिमवद्गिरिकाननेषु=हिमालय के वनों मे । दीप्तै: इव = प्रज्वलित हुई के समान । औपधिवनै =वनस्पतियो के वन वाले । उपरंजितेषु=प्रकाशमान । अतिमनोरथेन=मानुषी सीमा के पार वाली अभिलाषा से । दृश्यन्ते=देखे जाते है । सौवर्णान्=काचनपार्श्व नामक । दर्शयिष्यति =दिखाएगा । भिन्न =विदीर्ण हुआ । क्रौञ्चत्वम्=क्रौच पर्वत तुल्य दशा को (एक बार परशुराम और कार्तिकेय दोनो महादेव से अस्त्र वेद का सविधि अध्ययन कर रहे थे । इनमें विद्या के तारतम्य का संघर्ष उपस्थित हुआ । महादेव ने परीक्षा के लिए तय किया कि जो इस पर्वत को वाणों द्वारा भेद देगा, उसे प्राथम्य प्राप्त होगा । परशुराम ने ऐसा ही किया ।) अवलेप:= शूरवीरता का गर्व । विद्युत्सम्पात =बिजली की चमक । इहस्थम्=यही विद्यमान । वृद्धि=प्रभाव । दिष्ट्या=सौभाग्य से (अव्यय) । वर्धते=विजयते । अर्हति= योग्य है । ब्रूहि=कहो ।

अन्वय—उभयस्य सान्निध्यम् अस्ति, एतत् यदि साधयिष्यति । तपसि श्रान्ते धनु. वा धनुषि श्रान्ते: । (९)

अन्वय—तै तर्पिता: पितर: सुतफलं लभन्ते, हि दीप्यमाना: जरां हित्वा खम् उपयान्ति । सुरै: तुल्यं विमान वासं समुपयान्ति च आवर्तिभि: विषयै: बलात् न ध्रियन्ते । (१०)

अन्वय—पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमान् विन्ध्यं वनं तव दयिता: सखी लता: च आपृच्छ्य । दीप्तै: इव औषधिवनै: उपरञ्जितेषु तेषु हिमवद्गिरि काननेषु वत्स्यामि । (११)

अन्वय—हिमवान् तान् सौवर्णान् मृगान् मे दर्शयिष्यति, वा मद्बाण वेगेन भिन्नः क्रौञ्चत्वम् गमिष्यति । (१२)

अन्वय—यदि इह स्वयम् आगत:, एतानि तातस्य भाग्यानि । हि एष: पूजायाम् अर्हति । मैथिलि, लक्ष्मण ब्रूहि । (१३)

हिन्दी अर्थ

रावण—आपने सभी वेद-शास्त्रों को छोड़ कर श्राद्धकल्प में विशेष उत्कंठा प्रकट की है। ऐसा क्यों ?

राम—श्रीमन्, पिता से विहीन होने के कारण अभी इसी का ज्ञान अपेक्षित है।

रावण—आप संकोच मत करें। आप पूछिए।

राम—भगवन् पिण्डदान के समय पितरों को किससे तृप्त करूँ ?

रावण—जो कुछ श्रद्धा से दिया जाए, वह श्राद्ध कहलाता है।

राम—भगवन्, अनादर से दी गई वस्तु तो परित्यक्त होती है। मेरा प्रश्न विशेष वस्तु के विषय में है।

रावण—सुनो, घासों में कुश, औषधियों में तिल, शाकों मे मटर, मछलियों मे मगरमच्छ, पक्षियों में वार्ध्रीणस, पशुओं में गाय या गैंडा। ये सारी चीजें मनुष्यों के लिए कही गई है।

राम—भगवन् "वा" शब्द से लगता है कि कुछ और वस्तु भी शेष बची है।

रावण—हाँ है, किन्तु उसे तो कोई प्रतापी व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है।

राम—भगवन्, यही तो मेरा निश्चय है।

इस कार्य को पूरा करने के लिए दोनों साधन मेरे पास हैं। यदि तप असफल हुआ तो धनुष और धनुष के असफल होने पर तप। (९)

रावण—हैं। किन्तु उनका निवास हिमालय पर है।

राम—हिमालय पर। अच्छा इसके आगे।

रावण—उनका नाम कांचनपार्श्व नामक हिरण है। वे हिमालय की सातवीं चोटी पर साक्षात् महादेव के मस्तक से गिरने वाली गंगा का जल

पीते हैं। उनकी पीठ वैदूर्य मणि की भाँति श्याम वर्ण की है। वे वायु के समान शीघ्रगामी है। वैखानस, बालखिल्य तथा नैमिषारण्य मे रहने वाले ऋषि गण ध्यान मात्र से ही उन्हे बुला कर श्राद्ध कर्म करते है।

उनसे तर्पित होकर पितर गण पुत्र के फल को प्राप्त करते हैं। फिर प्रकाशमान कान्ति वाले वृद्धावस्था को त्याग कर सीधे स्वर्ग चले जाते है। वहां वे देवताओ के साथ विमान में रहते हैं और आवागमन की वासना से बलपूर्वक खीचे नही जाते। (१०)

राम—सीते,

अपने पुत्र के समान पाले-पोसे गए हरिणों और वृक्षों से, विन्ध्य पर्वत तथा इसके वन से, अपनी प्रिय सखियों के समान लताओं से तुम विदा ले लो। मैं अब यहां से जाकर चमकने वाली जड़ी बूटियो से भासित हिमालय पर निवास करूंगा। अतः वहा जाना है। (११)

सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा।

रावण—राम, अधिक मनोरथ मत बढाओ। वे हिरण मनुष्यों को न दिखाई देते हैं।

राम—भगवान्, क्या वे हिमालय पर रहते है ?

रावण—और क्या ?

राम—तो फिर आप देखिए—

या तो हिमालय उन कांचन मृगो को लाकर मेरे सामने उपस्थित करेगा अथवा मेरे बाणों द्वारा विदीर्ण होकर क्रौञ्च पर्वत की दशा को प्राप्त करेगा। (१२)

रावण—(स्वगत) अहो, इसका घमण्ड तो सहा नही जाता (प्रकट) अरे, बिजली की चमक सी दिखाई दे रही है। हे राम, तुम्हारे यही रहने पर भी हिमालय तुम्हारा आदर कर रहा है। यह कांचनपार्श्व मृग है।

राम—यह तो आपका प्रभाव है।

राम— तव तो मैं ही जाऊँगा।
सीता—आर्यपुत्र, मैं क्या करूँगी ?
राम—भगवान् (इस संन्यासी) की सेवा।
सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा।
(राम निकल जाते हैं)
रावण—अरे, यह राम अभी तो मेरे लिए अर्घ्य लेकर आ रहे थे और ये अब बिना पूजा किए ही दौड़ते हुए हरिण को देखकर उस पर धनुष चढ़ा रहे हैं।
अहा, कैसी असीम शक्ति, कैसा असीम पराक्रम, कैसा असीम धैर्य और कैसा असीम वेग है। "राम" इन थोड़े से अक्षरो से मानो उचित रूप मे ही यह पूरा ससार व्याप्त हो रहा है। (१४)
यह हरिण एक ही छलाग मे बाण के निशाने से बाहर होकर घने वन मे घुस गया।
सीता—(अपने मन मे) यहां पर पतिदेव के अभाव मे मुझे भय लग रहा है।
रावण—(अपने मन में) राम को छल-कपट से दूर करने पर मैं इस आश्रम से अकेली रोती हुई बाला सीता को मन्त्र के उच्चारण से शून्य आहुति की भाति हरण करता हू। (१५)
सीता—तो फिर पर्णशाला मे प्रवेश करती हूँ। (जाना चाहती है)
रावण—(अपना रूप धारण करके) सीते ठहरो, ठहरो।
सीता—(डर कर) यह अब कौन है ?
रावण—क्या तू नही जानती ?
युद्ध में जिसने दानवो और देवताओ को परास्त किया, जिसने इन्द्र आदि को जीता, जिसने शूर्पणखा की नासिका भंग को देखा, जिसने खर और दूषण भाइयों का मारा जाना सुना, वही मैं रावण इस समय गर्व से दुष्ट बुद्धि एवं अतुलनीय शक्ति वाले राम को माया से ठग कर हे विशाल नेत्रो वाली सीते, तुम्हे हर कर ले जाने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। (१६)

(5) मूल

सीता—हं रावणो नाम। (प्रतिष्ठते)
रावणः—आः ! रावणस्य चक्षुर्विपयमागता क्व यस्यासि ?
सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व। परित्रायस्व।

रावणः—सीते ! श्रूयतां मत्पराक्रमः ।
भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः
क्रुष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः ।
धिग् भोः स्वर्गम् भीतदेवैर्निविष्टं
धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥ (१७)

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।

रावणः—
राम वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा
स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।
किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभि
र्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥ (१८)

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व । सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।

रावणः—विलपसि किमिदं विशालनेत्रे
विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।
विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं
ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥ (१९)

सीता—(सरोषम्) शप्तोऽसि ।

रावणः—अहह ! अहो पतिव्रतायास्तेजः ।
योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः ।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥ (२०)

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।

रावणः—(सीतां गृहीत्वा) भो भोः । जनस्थानवासिनस्तपस्विनः शृण्वन्तु भवन्तः ।
बलादेष दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्यात् रामः पराक्रमम् ॥ (२१)

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व । परित्रायस्व

रावणः—(परिक्रामन् विलोक्य) अये ! स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितव पण्डश्चण्डचञ्चुरभिधावत्येष जटायुः । आः ! तिष्ठेदानीम्

सीता—आर्य पुत्र, बचाओ, बचाओ। हे लक्ष्मण, मुझे बचाओ, बचाओ।

रावण—हे दीर्घ नेत्रों वाली सीते, इस तरह क्यों विलाप कर रही हो ? जिस प्रकार तुम्हारे पतिदेव हैं, मुझे भी वैसे ही समझो। यह राम मुझसे लड़ने में असमर्थ है, भले ही बहुत अधिक शक्ति से युक्त एवं देवताओं के समूह के साथ ही क्यों न हो। (१९)

सीता—(क्रोध में) मैं तुझे शाप देती हूं।

रावण—अहा हा, वाह रे पतिव्रता का तेज।

जो मैं आकाश में चलते समय सूर्य की किरणों से भी नहीं जलता, वह इसके "मैं शाप देती हूँ" इन थोड़े से अक्षरों से कैसे जलूँगा। (२०)

सीता—आर्य पुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—(सीता को लेकर) अरे रे, जनस्थान में रहने वाले तपस्वियो, आप लोग सुनें।

यह रावण सीता को बलपूर्वक लेकर जा रहा है। यदि राम को क्षात्र धर्म पर कुछ आस्था हो, तो वह अपना पराक्रम प्रकट करें। (२१)

सीता—आर्य पुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो।

रावण—(घूमते हुए देख कर) अरे, अपने पंखों की तेज वायु से सारे वनवृक्षों को कम्पित कर देने वाला और भयानक चोंच वाला यह जटायु मेरी तरफ ही दौड़ रहा है। अरे, जरा ठहर तो,

मैं अपने हाथों में तीखी तलवार को निकाल कर तेरे पंखों को काटता हूँ और तूझे खून से भिगो कर यमलोक भेजता हूँ। (२२)

(दोनों का प्रस्थान)

पाँचवाँ अंक समाप्त

षष्ठ अंक

(१) मूल

(ततः प्रविशतो वृद्धतापसौ)

उभौ—परित्रायतां परित्रायतां भवन्तः !

प्रथमः—इयं हि नीलोत्पलदामवर्चसा,
मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना ।
निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा
मृगीव सीता परिभूय नीयते ॥ (१)

द्वितीयः—एषा खलु तत्रभवती वैदेही,
विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना
विधूयमानेव च पुष्पिता लता ।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा
तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥ (२,

उभौ—परित्रायतां परित्रायतां भवन्तः ।

प्रथमः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये वचनसमकाल एव दशरथस्यानृण्यं कर्तुम् "मयि स्थिते क्व यास्यसी" ति रावणमाहूयान्तरिक्षमुत्पतितो जटायुः ।

द्वितीयः—एष रोषादुद्वृत्तनयनः प्रतिनिवृत्तो रावणः ।

प्रथमः—एष रावणः ।

द्वितीयः—एष जटायुः ।

उभौ—हन्तैतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम् ।

प्रथमः—काश्यप ! काश्यप ! पश्य क्रव्यादीश्वरस्य सामर्थ्यम् ।

* पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते
तुण्डाभ्या सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते ।

तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पात्यते ॥ (३)

द्वितीय.—हन्त ! सक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणासंदेशे हतः ।

उभौ—हा धिक् । पतितोऽत्रभवान् जटायु. ।

प्रथमः—भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः ।

कृत्वा स्ववीर्यसदृश परम प्रयत्नं
क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो
नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥ (४)

उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (निष्क्रान्तौ)

(विष्कम्भः)

शब्दार्थ—परित्रायताम् = सीता की रक्षा करो । भवन्त. = हे जनस्थान के रहने वालो । नीलोत्पलदामवर्चसा = नील कमलों की माला के समान तेज वाला । मृणालशुक्ला = कमल तन्तु के समान श्वेत । उज्ज्वलदष्ट्रहासिना = हँसते समय चमकीले दाँतों वाला । निशाचरेन्द्रेण = रावण के द्वारा । निशार्थचारिणा = चोर के द्वारा । मृगीव = हरिणी की भाँति । परिभूय = दुःख देकर । नीयते = ले जाई जा रही है । विचेष्टमाना = छटपटाती हुई । भुजङ्गमाङ्गना = सर्पिणी । विधूयमाना = काँपती हुई । पुष्पिता = खिली हुई । प्रसह्य = बलपूर्वक । पापेन = बुरा कार्य करने वाले । दशाननेन = रावण के द्वारा । सिद्धिः = तपस्या की फल सम्पत्ति । अपनीयते = अपहरण की जा रही है । वचनसमकाले = बोलने के साथ ही । आनृण्यम् = मित्रता का बदला । कर्तुम् = चुकाने के लिए । यास्यसि = जाओगे ।

प्राहूय = आवाहन करके अर्थात् बुला कर। अन्तरिक्ष = आकाश में। उत्पतितः = उड गया। रोषात् = क्रोध से। उद्वृत्तनयन. = आँखें निकाल कर। प्रतिनिवृत्तः = वापस लौटा। जटायुः = गिद्ध, सम्पाति का भाई। प्रवृत्त = प्रारम्भ हो गया। काश्यप = एक वृद्ध तापस का नाम। क्रव्यादीश्वरस्य = क्रव्याद = कच्चे मास को खाने वाला, उसका ईश्वर = स्वामी अर्थात् जटायु के। सामर्थ्यम् = शक्ति। पक्षाभ्यां = दोनो पखों से। परिभूय = मार कर। वीर्यविषयं = अपने पराक्रम के लक्ष्य को। द्वन्द्व = रावण से। प्रतिव्यूहते = युद्ध कर रहा है। तुण्डाभ्या = दोनों चोचो से। सुनिघृष्टतीक्ष्णम् = अच्छी तरह घिसी होने से तीखी बनी। अचल. = धीर। संवेष्टनं = भली पकड के साथ। चेष्टते = प्रयास कर रहा है। तीक्ष्णै = तीखे। आयसकण्टकैः = लौह निर्मित कीले। भीमान्तर = भयंकर अन्तःस्थित मास आदि। वक्षसः = छाती से। वज्राग्रै = वज्र की नोक के तुल्य। दार्यमाणविषमात् = फाडने से अन्दर की वस्तु के प्रत्यक्ष हो जाने से भीषण। शैलात् = पर्वत से। शिला = पत्थर के समान। पाट्यते = तोड कर ले रहा है। असिना = तलवार से। दक्षिणासदेशे = दाहिने कन्धे की ओर। हतः = मार डाला। पतितः = गिर पड़ा। स्ववीर्यसदृश = अपनी शक्ति के अनुसार। परमं = उत्तम। क्रीडामयूरं = खेलने के मोर की तरह। अचिन्तयित्वा = नही गिन कर। दीप्तं = भलो प्रकार से प्रज्वलित। निशाचरपतेः = रावण के। अवधूय = तिरस्कार करके। तेज. = पराक्रम को। नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इव = हाथी द्वारा तोडे गए जंगल के वृक्ष के समान। अवसन्नः = नष्ट हो गया। स्वर्ग्यः = स्वर्ग के योग्य। वृत्तान्त = समाचार को। बाढम् = उचित। प्रथमः मुख्य। कल्प. = प्रस्ताव।

अन्वय—नीलोत्पलदामवर्चसा मृणालशुक्ला उज्ज्वलदंष्ट्रहासिना निशार्धनारिणा निशाचरेन्द्रेण इयं सीता मृगी इव परिभूय नीयते हि। (१)

अन्वय—विचेष्टमाना भुजगमांगना इव च विधूयमाना पुष्पिता लता इव सा सिद्धिः इव पापेन दशाननेन तपोवनात् प्रसह्य नीयते। (२)

अन्वय—(अयम्) पक्षाभ्या परिभूय वीर्यविषय द्वन्द्व प्रतिव्यूहते, अचलः तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णम् संवेष्टनं चेष्टते, आयसकण्टकैः इव तीक्ष्णैः

नखैः वक्षसः भीमान्तर वज्राग्रैः दार्यमाणविषमात् शैलात् शिला पात्यते । (३)

अन्वय—(एष) शत्रुम् क्रीडामयूरम् इव अचिन्तयित्वा । स्ववीर्यस परमं प्रयत्न कृत्वा, निशाचरपते दीप्त तेजः अवधूय नागेन्द्रभग्नवनवृक्षः अवसन्नः । (४)

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद दो वृद्ध तपस्वी प्रवेश करते है)

दोनो—आप लोग बचाइए, बचाइए ।

पहला—यह सीता रावण के द्वारा बलपूर्वक हरी जा रही है, जैसे सिंह के द्वारा कोई हरिणी हो । यह रावण नील कमलों की माला के समान श्याम वर्ण का है । हँसने के समय कमल तन्तु की तरह श्वेत दन्त पंक्ति वाला है एव आधी रात को विचरण करने वाला है । (१)

दूसरा—यह देवी सीता,

छटपटाती हुई नागिन की तरह, काँपती हुई पुष्पलता की तरह, पापी दशानन रावण के द्वारा तपोवन से तपस्या की फल सिद्धि की तरह जबर्दस्ती ले जाई जा रही है । (२)

दोनों—आप लोग बचाइए, बचाइए ।

पहला—(ऊपर देख कर) अरे, हमारे पुकारते ही यह जटायु दशरथ से उऋण होने के लिए "मेरे रहते तू कहाँ जायेगा" इस तरह रावण को ललकार आकाश मे उड़ा ।

दूसरा—यह रावण क्रोध से आँखें निकाल कर वापस लौटा ।

पहला—यह रावण है ।

दूसरा—यह जटायु है ।

दोनों—हाय, आकाश मे ही युद्ध छिड गया ।

पहला—काश्यप, काश्यप, गृध्रराज जटायु के पराक्रम को देखो ।

यह अपने पखो से रावण पर प्रहार करता हुआ उससे वीरतापूर्वक द्वन्द्व युद्ध कर रहा है । खूब डट कर अपने तीखे चचु युगल द्वारा उसे काट खाने की चेष्टा कर रहा है । वह लौह कण्टक युक्त नखो से रावण की छाती पर भयानक तथा विस्तृत घाव इस तरह पैदा कर

फाड़ी जा रही रहा है, मानो वज्र की नोकों द्वारा कठोर शिला हो। (३)

—अरे, क्रोधित रावण ने जटायु के दाहिने कन्धे पर तलवार का प्रहार कर दिया।

—हाय, धिक्कार है। यह जटायु तो गिर पड़ा।

ा—अरे, बड़ा दुःख है। यह पूज्य जटायु सचमुच में—अपने पराक्रम के समान पूरी तरह से प्रयास करके, खिलौने के बने मोर के समान शत्रु रावण की परवाह न करके, राक्षसराज की प्रचण्ड शक्ति को दबा कर उसी प्रकार समाप्त हो गया है, जैसे किसी गजराज के द्वारा उत्पादित कोई वन वृक्ष उखाड़ कर फेंका गया हो। (४)

दोनों—इसे स्वर्ग प्राप्त हो।

पहला—काश्यप, आओ। ये समाचार श्री राम को दे।

दूसरा—अच्छा। यह तो पहला काम है। (दोनों निकल जाते है)

(विष्कम्भक समाप्त हुआ)

(2) मूल

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—आर्य ! अहं विजया। किं क्रियाताम् ?

काञ्चुकीयः—विजये। निवेद्यता निवेद्यता भरतकुमाराय–"एष खलु रामदर्शनार्थम् जनस्थानं प्रस्थितः प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान सुमन्त्र" इति।

प्रतिहारी—आर्य ! अपि कृतार्थस्तातसुमन्त्र आगतः ?

काञ्चुकीयः—भवति ! न जाने।

हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननमागतम्
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥ (५)

प्रतिहारी—आर्य ! एतच्छ्रुत्वा पर्याकुलमिव मे हृदयम्।

काञ्चुकीयः—भवति ! किमिदानी स्थिता ? शीघ्रं निवेद्यताम्।

प्रतिहारी—आर्य ! इयं निवेदयामि। (निष्क्रान्त)

काञ्चुकीयः— (विलोक्य) अये ! अयमत्रभवान् भरतकुमारः सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयश्चीरवल्कलवसनश्चित्रजटापुञ्जरितोत्तमाङ्ग इत एवाभिवर्तते । य एषः-

प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकाल
स्तिग्मांशुवंशतिलकस्त्रिदशेन्द्रकल्पः ।
आज्ञावशादखिलभूपरिरक्षणस्थः
श्रीमानुदारकलभेभसमानयानः ॥ (६)

(ततः प्रविशति भरतः प्रतिहारी च)

भरतः—विजये ! एवमुपगतस्तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

गत्वा तु पूर्वमयमार्यं निरीक्षणार्थम्
लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो
रामं प्रजानयनवुद्धिमनोभिरामम् ॥ (७)

काञ्चुकीयः—(उपगम्य) जयतु कुमारः ।

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्रभवान् सुमन्त्रः !

काञ्चुकीयः—असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

भरतः—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति कुमारः ।(निष्क्रान्तौ)

शब्दार्थ—कांचन=सुवर्णरचित । तोरणद्वारं=बाहर का दरवाजा । अशून्यं कुरुते=सूने से रहित कर रहा है अर्थात् विद्यमान है । प्रतिहारी=द्वारपालिका । विजया=द्वारपालिका का नाम । क्रियताम्=किया जाए । निवेद्यतां=निवेदन करो । रामदर्शनार्थत्=राम से मिलने के लिए । जनस्थानं=स्थान का नाम । प्रतिनिवृत्तः=वापस लौटे हैं । प्रस्थितः=गए हुए । कृतार्थं=सफल मनोरथ वाले । अपि=क्या (अपि जब वाक्य के प्रारम्भ मे प्रयुक्त होता है, तो प्रश्न वाचक हो जाता है) । भवति=हे देवी । जाने=जानता हूँ । शोषिताननं = सूखे मुह वाले । आकुलम्=व्यग्र । जनितं=उत्पन्न । कुतूहल=उत्कण्ठा । चीरवल्कलवसन=वृक्ष की त्वचा के वस्त्र पहनने वाले । चित्र=नाना प्रकार की । जटापुञ्ज=जटाओं का समूह । पुञ्जरितोत्तमाङ्गः=पीले रंग के सिर वाले । इत एव=इधर ही । अभिवर्तते=आ रहे है । प्रख्यातसद्गुण-

ण. = सुप्रसिद्ध अच्छे गुणों का समूह । प्रतिपक्षकाल. = शत्रुओं के लिए त्यु । तिग्मांशुवंशतिलकः = सूर्य वंश का भूषण भूत । त्रिदशेन्द्रकल्पः = इन्द्र कुछ कम । आज्ञावशात् = राम के आदेश के अनुरोध से । अखिलभूपरिक्षणस्थः = सारी भूमि के पालन के अधिकार में स्थित । श्रीमान् = प्रशस्त लक्ष्मी वाले । उदारकलभेभयसमानयानः = प्रशस्त ३० वर्ष के हाथी के समान गति वाले । उपगतः = आ गए हैं । लब्धप्रसादशपथे = पादुका रूप कृपा और १४ वर्ष बाद राज्य ले लूँगा रूपी सौगन्ध को ग्रहण करने वाले । मयि सन्निवृत्ते = मेरे राम के पास से लौटने पर । प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् = प्रजा के नेत्र और बुद्धि के लिए सुन्दर बने (राम को) ।

अन्वय—अधुना हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननम् आगतं सुमन्त्र दृष्ट्वा एवं मे मनः आकुलम् आसीत् (५)

अन्वय—प्रख्यातसद्‌गुणगण. प्रतिपक्षकालः तिग्मांशुवंशतिलकः त्रिदशेन्द्रकल्प. आज्ञावशात् अखिलभूपरिरक्षणस्थ श्रीमान् उदारकलभेभसमानयानः (भरतोऽस्ति) । (६)

अन्वय—लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते अयम् अत्रभवान् सुमन्त्रः पूर्वम् आर्यनिरीक्षणार्थम् गत्वा प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् 'राम' दृष्ट्वा इह आगतः किम् । (७)

हिन्दी अर्थ

(कंचुकी का प्रवेश)

काञ्चुकीय—अरे, यहा कौन है ? काचन तोरण द्वार पर कौन उपस्थित है ?

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी—आर्य, मैं विजया हूँ । क्या किया जाए ?

काञ्चुकीय—विजये, कुमार भरत से कहो कि राम से मिलने के लिए जनस्थान गए हुए श्री सुमन्त्र वापस लौट आए है ।

प्रतिहारी—आर्य, क्या तात सुमन्त्र सफल मनोरथ होकर आए हैं ।

काञ्चुकीय—हे देवी, मुझे पता नहीं । अभी आए हुए सुमन्त्र को देख कर मेरा मन व्याकुल हो रहा है । उनका मुख हृदय मे विद्यमान दुःख रूपी अग्नि से सूखा हुआ है । (५)

श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो
गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ (८)

प्रतिहारी—(सुमन्त्रमुद्दिश्य) एत्वेत्वार्यः । एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः

सुमन्त्र—(उपसृत्य) जयतु कुमारः ।

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्ट त्वया निष्कारणावहितवनवासं सौभ्रात्रम् ।

(सुमन्त्रः सचिन्तस्तिष्ठति)

प्रतिहारी—भर्तृदारकः खल्वार्यम् पृच्छति ।

सुमन्त्रः—भवति । किं माम् ?

भरत—(स्वगतम्) अतिमहान् खल्वायासः । सन्तापाद् भ्रष्टहृदयः । (प्रकाशम्) अपि मार्गात् प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार ! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थम् जनस्थानं प्रस्थितः, कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तिष्ये ।

भरतः—किन्नु खलु क्रोधेन वा लज्जया वात्मानं न दर्शयन्ति ?

सुमन्त्रः—कुमार !

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा व कृतचेतसाम् ।
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम् ॥ (९)

भरतः अथ क्व गता इति श्रुताः ।

सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः । तत्र गता इति श्रुताः ।

भरतः—हन्त ! अविज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः दुःखिता प्रतिवसन्ति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! (तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।)

भरतः—तात । कथमिव ।

सुमन्त्रः—सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन वालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ (१०)

भरतः—तात ! कथं तुल्यदुःखेन नाम ?

सुमन्त्रः—(आत्मगतम्) हन्त ! सर्वमुक्तमेव मया । (प्रकाशम्)
कुमार ! न खलु किञ्चित् । एतेश्वर्यभ्रंशतुल्या समाभिप्रेता ।
भरतः—तात ! किं गूहसे ? स्वर्गम् गतेन महाराजपादमूलेन शापितः
स्याः, यदि सत्यं न ब्रूयाः ।
सुमन्त्रः—का गतिः । श्रूयताम् ।
वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥ (११)

शब्दार्थ—नरपतिनिधनं= दशरथ की मृत्यु । मया=मुझ सुमन्त्र के द्वारा । अनुभूतं=प्रत्यक्ष की गई । नृपतिसुतव्यसनं=राम का वनवास जन्य दुःख । श्रुतः=ज्ञात हुआ । इह=इस उम्र में । स=वह प्रसिद्ध । मैथिलीप्रणाशः =सीता का हरण । उद्दिश्य=लक्ष्य करके । एतु=आओ भर्ता=स्वामी भरत । उपसर्पतु=समीप में जाओ । लोकाविष्कृतपितृस्नेहः=संसार में पिता की भक्ति को प्रकट करने वाले राम । द्विधाभूतम्=दूसरे रूप में स्थित । अरुन्धतीचारित्रम्= वसिष्ठ की पत्नी का पातिव्रत्य अर्थात् सीता । निष्कारणावहितवनवासं=बिना कारण के वनवास भोगने वाले । सौभ्रात्रम्=भाई का स्नेह अर्थात् लक्ष्मण । सचिन्तः=चिन्ता युक्त । भर्तृदारकः=राजकुमार भरत । अतिमहान्=अत्यधिक । आयामः=खेद । सन्तापात्=शोक में । अष्टहृदयः =चंचल चित्त वाले । प्रतिनिवृत्तः=वापस आ गए । नियोगात्=आज्ञा से । अन्तरा=बीच से ही । विनीतानां=नम्र व्यक्तियों को । कृतचेतसां=सुसंस्कृत चित्त वालों को । तच्छून्यं=तत्+शून्यं= उनसे रिक्त । विहीन=विरहित । श्रुताः=सुना है । किष्किंधा=नगरी का नाम बालि—सुग्रीव की राजधानी । वनौकसां=वानरों का । निवासः=आवास स्थान । अविज्ञातपुरुषविशेषाः = मनुष्यों के तारतम्य को न जानने वाले । दुःखिताः=पीड़ित । तिर्यग्योनयः= कीट आदि पशु । उपकृत=उपकार को । अवगच्छति=समझते है । भ्रंशितः राज्यात्=राज लक्ष्मी से अपहृत हुआ । ज्येष्ठेन=बड़े । हृतदारः=पत्नी का अपहरण हो जाने वाला । वसञ्छैले=वसन्+शैले=पर्वत पर रहते हुए । तुल्यदुःखेन=समान कष्ट से । मोक्षितः = छुड़ा दिया गया । अभिप्रेता=कहने का आशय । गूहसे=छिपा रहे हो । शापितः स्याः=तुमको सौगन्ध है । ब्रूयाः

=तुमने कहा। गतिः=अवस्था। अर्थे=लिए। महता रक्षसा=बलवान् राक्षस रावण के साथ। माया=कपट को। उपाश्रित्य=ग्रहण करके। ततः=इसके बाद। हृता=चुराई गई।

अन्वय—मया नरपतिनिधनम् अनुभूतम्। मया एव नृपतिसुतव्यसनं दृष्टम्। च इह सः मैथिलीप्रणाशः श्रुतः। मे आयुषा गुण इव बहु अपराद्धम्। (८)

अन्वय—विनीतानां क्रोधः कुतः। वा कृतचेतसां लज्जा। मया तैः विहीनम तत् शून्यं तु तपोवनं दृष्टम्। (९)

अन्वय—ज्येष्ठेन भ्रात्रा बालिना राज्यात् भ्रंशित. हृतदारः शैले वसन् सुग्रीवः तुल्यदुःखेन मोक्षितः। (१०)

अन्वय—मुनिजनस्य अर्थे महता रक्षसा वैरं कृतम्, ततः रावणेन मायाम् उपाश्रित्य सीता हृता। (११)

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद सुमन्त्र और प्रतिहारी का प्रवेश)

सुमन्त्र—(दुःखपूर्वक) अरे, बड़ा दुःख है।

मैंने राजा दशरथ की मृत्यु का अनुभव किया। मैंने ही राम का वनवास भी देखा। अब यहीं पर सीता का अपहरण भी सुन लिया है। मेरी लम्बी आयु ने गुण के बदले अपराध ही अधिक किए। (८)

प्रतिहारी—(सुमन्त्र को लक्ष्य करके) आर्य, आइए, आइए। ये स्वामी है। इनके समीप जाइए।

सुमन्त्र—(पास जाकर) राजकुमार की जय हो।

भरत—तात, क्या आपने राम को देखा जिन्होंने संसार में पितृभक्ति, प्रकट की है। क्या आपने सीता को देखा, जिस में पतिव्रता अरुन्धती का दूसरा चरित्र प्राप्त होता है। क्या आपने लक्ष्मण को देखा, जिसने अपने भाई के स्नेह से बिना किसी कारण के वनवास को ग्रहण किया है।

(सुमन्त्र चिन्ताग्रस्त से खड़े रहते है।)

प्रतिहारी—राजकुमार आप से ही पूछ रहे हैं।

सुमन्त्र—हे देवी, क्या मुझ से ?

भरत—(मन में) सचमुच में महान् दुःख है। पीड़ा के कारण इनका हृदय स्थिर नहीं है। (प्रकट में) क्या आप बीच में से ही लौट आए?

सुमन्त्र—राजकुमार, आपके आदेश से मैं राम के दर्शन के लिए जनस्थान गया हुआ बीच से ही कैसे लौट आता?

भरत—कहीं वे लोग क्रोध और संकोच के कारण अपने को छिपा कर तो नहीं रहते?

सुमन्त्र—राजकुमार,

विनयी जनों को क्रोध कहाँ और निर्मल अन्तःकरण में लज्जा का प्रवेश कहाँ? किन्तु जब मैंने तपोवन देखा, तब वह उन लोगों से रहित तथा सूनसान था। (९)

भरत—तो फिर वे कहाँ चले गए, कुछ सुना।

सुमन्त्र—किष्किन्धा नामक नगर वानरों का निवास स्थान है। वहाँ चले गए, ऐसा सुना है।

भरत—हाय, वानरों का तो मनुष्यों से परिचय नहीं होता। वहाँ वे कष्ट से रहते होंगे।

सुमन्त्र—कुमार, पशु-पक्षी भी उपकार मानते हैं।

भरत—तात, किस प्रकार?

सुमन्त्र—सुग्रीव नाम के एक वानर को उसके बड़े भाई बाली ने राज्यच्युत कर दिया था और उसकी स्त्री भी छीन ली थी। पर्वत पर रहने वाले उस सुग्रीव को 'उसके समान दुःख वाले' राम ने कष्टमुक्त कर दिया। (१०)

भरत—तात, 'उसके समान दुःख वाले' का आशय क्या है?

सुमन्त्र—(मन में) हाय, मैंने तो सब कुछ कह दिया। (सबके सामने) कुमार, कुछ नहीं। मेरा आशय राज्य नहीं प्राप्त होने की समानता से है।

भरत—तात, क्यों छिपा रहे हैं? यदि सच बात नहीं बताई तो आपको स्वर्गवासी महाराज दशरथ के चरणों की शपथ है।

सुमन्त्र—क्या उपाय है? सुनो,

मुनियों की रक्षा के कारण बलवान् राक्षसों से शत्रुता हो गई थी।

इसी कारण रावण ने कपट वेश धारण करके सीता का हरण कर लिया। (११)

(४) मूल

भरतः—कथं हृतेति ? (मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

भरतः—(पुनः समाश्वस्य) भोः ! कष्टम्।

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो
दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो
जीमूतछन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः॥ (१२)

भोः ! किमिदानीं करिष्ये ? भवतु, दृष्टम्। अनुगच्छतु मां तातः।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः।

(उभौ परिक्रामतः)

सुमन्त्रः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम्। देवीनां चतुश्शालमिदम्।

भरतः—अत्रैव मे कार्यम्। भोः ! क इह प्रतिहारे ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जयतु भर्तृदारकः। विजया खल्वहम्।

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेदयात्रभवत्यै।

प्रतिहारी—कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि।

भरतः—या मां राजानमिच्छति।

प्रतिहारी—(आत्मगतम्) हं किन्नु खलु भवेत् ? (प्रकाशम्) भर्तः ! तथा।

(ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च)

कैकेयी—विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः।

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा। भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात् सुमन्त्र आगतः। तेन सह भर्तृदारको भरतो भट्टिनीं तात-प्रेक्षितुमिच्छति किल।

कैकेयी—(स्वगतम्) केन खलूद्घातेन मामुपालप्स्यते भरतः ?

प्रतिहारी—भट्टिनि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः ?

प्रतिहारी—(मन में) अरे, अब क्या होगा ? (प्रकट में) स्वामी, अच्छा।
(इसके बाद कैकेयी और प्रतिहारी का आगमन)

कैकेयी—विजये, क्या भरत मुझसे मिलने आया है ?

प्रतिहारी—महारानी, हां राजकुमार राम के पास से तात सुमन्त्र आए हैं। उनके साथ राजकुमार भरत ने महारानी से मिलने की इच्छा प्रकट की है।

कैकेयी—(मन में) न जाने किस बात पर भरत ताड़ना देगा।

प्रतिहारी—महारानी, क्या राजकुमार आ जाएं ?

कैकेयी—जाओ। उन्हें भेज दो।

प्रतिहारी—महारानी, ठीक है। (घूम कर और पास जाकर) राजकुमार की जय हो। आप प्रवेश कीजिए।

भरत—विजये, क्या सूचना दे दी ?

प्रतिहारी—हाँ।

भरत—तो फिर हम दोनों प्रवेश करें। (प्रवेश करते है)

कैकेयी—पुत्र, विजया ने कहा है कि राम के पास से सुमन्त्र आए है ?

भरत—आपको मैं इससे भी अच्छी सूचना दे रहा हूँ।

कैकेयी—पुत्र, तब तो क्या कौसल्या और सुमित्रा को भी बुला लें ?

भरत—नहीं, उन्हें नहीं सुनाना चाहिए।

कैकेयी—(मन में) अरे, पता नही क्या बात है। (प्रकट में) पुत्र, कहो तो।

भरत—सुनो,

जो अपने राज्य का परित्याग करके तुम्हारी आज्ञा से वन में गए थे, उनकी पत्नी सीता का अपहरण हो गया है। अब तो तुम्हारी इच्छा पूरी हुई। (१३)

कैकेयी—अहो !

भरत—हाय, दुःख है कि तुम्हारी जैसी वहू को पाकर अत्यन्त पराक्रमी और सम्मान वाले इक्ष्वाकु वंश के लोगों को अपनी स्त्री के अपहरण को भी देखना पड़ा। (१४)

मूल

कैकेयी—(आत्मगतम्) भवतु, इदानी कालः कथयितुम्। (प्रकाशम्) जात! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम्।

भरतः—किं शप्तो महाराजः?

कैकेयी—सुमन्त्र! आचक्ष्व विस्तरेण।

सुमन्त्र—यदाज्ञापयति भवती। कुमार! श्रूयताम्–पुरामृगयां गतेन महाराजेन कस्मिश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो वनगजबृंहितानकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुभूतो गुनितनयो हिंसितः।

भरतः—हिंसित इति। शान्तं शान्तं पापम्। ततस्ततः?

सुमन्त्र—ततस्तमेव गतं दृष्ट्वा,

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येव पुत्रशोकाद् विपत्स्यते॥ (१५) इति।

भरतः—नन्विदं कष्टं नाम।

कैकेयी—जात! एतन्निमित्तमपराधं मा निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति।

भरतः—अथ तुल्ये विप्रवासे कथमहमरण्य न प्रेपितः?

कैकेयी—जात! मातुल कुले वर्तमानस्य प्रकृतिभूतस्ते विप्रवासः।

भरत—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि?

कैकेयी—जात! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणीत्युक्तम्।

भरतः—अस्ति पाण्डित्य सम्यग् विचारयितुम्। अपि विदितमेतद् गुरुजनस्य?

सुमन्त्रः—कुमार वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितं च।

भरतः—हन्त! त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते। दिष्ट्यानपराद्धात्रभवती। अम्ब! यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तत्सर्वम् मर्षयितव्यम। अम्ब! अभिवादये।

तापस-- नन्दिलक, कुलपति ने कहा है कि अपनी स्त्री का अपहरण करने वाले, तीनो लोको को व्याकुल करने वाले रावण को मारकर, राक्षसी आचरण के विरुद्ध, अनेक गुणो से मण्डित विभीषण का अभिषेक करके, देवताओं और ऋषियो के सम्मुख अपने पवित्र चरित्र को प्रमाणित करने वाली देवी सीता को लेकर, भालू, वानरो और राक्षसों के प्रमुख व्यक्तियो से घिरे हुए श्री राम यहाँ आए हुए है, जो शरद् ऋतु के स्वच्छ आकाश के चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे है। आज इस तपोवन मे अरण्य सुलभ भोग-वैभव के अनुसार उनका स्वागत करने के लिए जो अभीष्ट है, वह सब सज्जित करके रखा जाए।

नन्दिलक—आर्य, सब कुछ तैयार है। किन्तु,

तापस—यह क्या ?

नन्दिलक—यहाँ विभीषण के साथ अन्य राक्षस भी है। उनके खाने के सम्बन्ध में कुलपति ही जानें।

तापस—किसलिए ?

नन्दिलक—वे तो माँस भी खाते है।

तापस—अरे, मत घबराओ। वे राक्षस तो विभीषण के वश में रहने वाले है।

नन्दिलक—तो ऐसे सज्जन राक्षस को नमस्कार। (निकल जाता है)

तापस—(देख कर) अये, ये तो श्रीमान् राम है। जो–

"हे मनुष्यो मे श्रेष्ठ, आपकी जय हो। आप अपने दूसरे शत्रुओ पर भी विजय प्राप्त करें। यह पृथ्वी एकच्छत्र वाली होकर आपके अधीन हो" इस प्रकार प्रसन्न बने बहुत से मुनियो द्वारा प्रशंसित होकर राजा राम पुष्पक- विमान से पृथ्वी तल पर उतर गए है। (१)

(२) मूल

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—भोः !

समुदितबलवीर्यम् रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम्।
वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥ (२)

तापसीनामभिवनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा चिरायते खलु मैथिली ।

(विलोक्य) अये ! इयं वैदेही,

सखीति सीतेति च जानकीति
यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति ।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री
सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥ (३)

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

तापसी—हला ! एष ते कुटुम्बिकः। उपसर्पनम् । न शक्यं त्वामेकाकिनीम् प्रेक्षितुम् ।

सीता—हम्, अद्यात्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति । (उपसृत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।

रामः—मैथिलि ! अपि जानासि, पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत् । अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।

सीता—जानामि जानामि । अवलोकितपत्रका उल्लोकयितव्या इदानी संवृत्ताः ।

रामः—एवमेतत् । निम्नस्थलोत्पादको हि कालः । मैथिलि ! अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत् ।

सीता—आर्यपुत्र ! दृढं खलु स्मरामि ।

रामः—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः ।

अत्रास्माभिरासीनैस्तातस्य निवपनक्रिया
चिन्तयद्भिः काञ्चनपार्श्वो नाम मृगोदृष्टः ।

सीता—हम् आर्यपुत्र ! मा खलु मा खल्वेवं भणितुम् । (भीता वेपते)

रामः—अलमलं सम्भ्रमेण । अतिक्रान्तः खल्वेषकालः । (दिशो विलोक्य) अये कुतो नु,

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः
सम्प्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः ।
शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः
सम्मूर्च्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥ (४)

शब्दार्थ—समुदितबलवीर्यम् = अच्छी तरह से बढ़ी हुई शक्ति वाले । जगति=संसार मे । गुणसमग्राम् = सभी गुणों से युक्त । विशुद्धाम्=पवित्र । गुरूणाम्=पिता आदि के । अन्तशः=अक्षरशः या पूरी तरह से । पूरयित्वा= पूरा करके । प्राप्तवान् अस्मि = आ गया हूँ । भूयः = फिर । अभिवादानार्थम्= प्रणाम के लिए । अभ्यन्तरं अन्दर । प्रविष्टा=गई हुई । चिरायते=देर कर रही है ।-यथावयः = अपनी अवस्था के अनुरूप । स्निग्धतर = अत्यन्त प्रेम से । स्नुषा=पुत्रवधू । तपस्विदारैः = मुनियो की स्त्रियों द्वारा । जनकेन्द्र- पुत्री = सीता । सम्भाष्यमाणा=बातचीत करती हुई । समुपैति = पास आ रही है । मन्दम् = धीरे-धीरे । कुटुम्बिकः = पति । उपसर्प = पास जाओ । एनम् = इसके । प्रेक्षितुम्=देखने में । अविश्वसनीयम् = बिना भरोसे के । मे= मुझे । प्रतिभाति = लगता है । उपसृत्य=पास जाकर । अपि=क्या । जानासि= याद करती हो । पूर्वाधिष्ठानं = पहले के समय का निवास । ज्ञायन्ते=पहचान रही हो । पुत्रकृतकाः=कृत्रिम पुत्र । अवलोकितपत्रकाः=थोड़े से पत्तों वाले अर्थात् छोटे । उल्लोकयितव्याः=सिर ऊँचा उठा कर देखने योग्य अर्थात् बड़े । संवृत्ताः=हो गए । निम्नस्थलोत्पादक=नीचे-ऊँचे भाव को पैदा करने वाला । कालः=समय । उपलभ्यते=याद कर रही हो । सप्तपर्णस्य=सतछौने के वृक्ष के । अधस्तात्=नीचे । शुक्लवासम=श्वेत वस्त्र पहने । परित्रस्त= भयभीत । मृगयूथम्=हरिणों का समूह । दृढम्=अच्छी तरह । नः=हमारी । तपसः=तपस्या का । साक्षिभूत = गवाह बना । महाकच्छः=बड़ा तालाब ।

आसीनैः=बैठे हुए । निवपनक्रियां=पिण्डदान को । चिन्तयद्भिः=सोचते हुए । भीता=डरी हुई। वेपते=कांपती है । अलम्=व्यर्थ । सम्भ्रमेण = सन्देह करना । अतिक्रान्तः=बीत गया । दिशः = चारों ओर। रेणुः = धूलि । समुत्पतति= उड़ रही है । लोध्रसमानगौरः = लोध के समान श्वेत वर्ण की । सम्प्रा-वृणोति=अच्छी तरह ढक रही है । पवनावधूतः = हवा से उड़ाई गई । पटह-स्वनधीरनादैः=नगाड़े की ध्वनि की गम्भीर गर्जना से । सम्मूर्च्छितः = अच्छी तरह बढा हुआ । नगरीकरोति = नगर बना रहा है ।

अन्वय—समुदितबलवीर्यम् रावणं नाशयित्वा, जगति गुणसमग्रां विशुद्धां सीतां प्राप्य, गुरूणां वचनम् अपि अन्तशः पूरयित्वा, भूयः मुनिजन-वनवासं प्राप्तवान् अस्मि । (२)

अन्वय—सखी इति, सीता इति, जानकी इति च, यथावयः स्निग्ध-तरं स्नुषा इति जनकेन्द्रपुत्री तपस्विदारैः सम्भाष्यमाणा मन्दम् समुपैति । (३)

अन्वय—लोध्रसमानगौरः रेणुः समुत्पतति, च पवनावधूतः दिशः सम्प्रावृणोति । पटहस्वनधीरनादैः सम्मूर्च्छितः शङ्खध्वनिः इदं वनं नगरी-करोति । (४)

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद राम प्रवेश करते हैं)

राम—अहा,

अत्यन्त पराक्रम सम्पन्न रावण को मार कर, संसार में सभी गुणों से पवित्र सीता को प्राप्त कर, पिताजीकी आज्ञा का भी पूरी तरह से पालनकर पुनः मुनियों के इस निवास स्थान में आ गया हूँ । (२)

मुनियों की स्त्रियों की वन्दना करने के लिए अन्दर गई हुई सीता काफी विलम्ब कर रही है । (देखकर) अरे, यह सीता

किसी के द्वारा सखी, किसी से सीता, किसी से जानकी इस प्रकार उम्र के अनुसार सम्बोधित की जा रही है । कोई इसेअत्यन्त स्नेह से, 'बहू' कह रही है । इस प्रकार यह सीता अन्य तपस्वियों की पत्नियों के साथ वार्तालाप करती हुई धीरे-धीरे इधर ही आ रही है । (३)

(इसके बाद सीता और तापसी का प्रवेश)

तापसी—अरी, ये तुम्हारे भर्ता हैं । इनके पास जाओ । मैं तुमको अकेली नहीं देख सकती हूं ।

सीता—हूं। आज भी मुझे विश्वास नहीं होता। (पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो।

रामः—सीते, क्या जानती हो, पहले हम इस जनस्थान में रहा करते थे। क्या तुम पुत्र के समान पाले गए इन वृक्षों को पहचानती हो?

सीता—जानती हूँ, जानती हूं। जिन वृक्षों को छोटे-छोटे पत्तों वाली स्थिति में देखा था, अब वे नेत्र ऊपर करके देखने योग्य हो गए हैं।

राम—ऐसा ही है। समय सचमुच अन्तर उत्पन्न कर देता है। सीते, याद है, इस सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे श्वेत वस्त्र पहने हुए भरत को देख कर हरिणों का झुण्ड भयभीत हो गया था।

सीता—आर्यपुत्र, अच्छी तरह से याद है।

राम—और यह हमारी तपस्या का साक्षी बना हुआ विशाल सरोवर है। यहीं बैठ कर हमने पिताजी की श्राद्ध क्रिया की चिन्ता करने के समय कांचनपार्श्व नामक हिरण को देखा था।

सीता—हूँ, आर्यपुत्र, उसका आप नाम मत लीजिए, मत लीजिए। (भयभीत होकर कांपती है।)

राम—मत घबराओ, मत घबराओ वह समय तो बीत गया। (चारों ओर देख कर) अरे, यह क्या है?
लोध्रपुष्प के समान सफेद धूल उड रही है। वह हवा से प्रसारित की हुई चारो दिशाओं को ढक रही है। यह शंख ध्वनि वाद्य यन्त्रो तथा शूर वीरों के गर्जन से वृद्धि को प्राप्त करके इस शान्त तपोवन को नगर का रूप दे रही है। (४)

(३) मूल

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः। आर्य!
अयं सैन्येन महद्दता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः ॥(५)

रामः—वत्स लक्ष्मण! किमेवं भरतः प्राप्तः?

लक्ष्मणः—आर्य! अथ किम्।

रामः—मैथिली! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं विशालीक्रियतां ते चक्षुः।

सीता--आर्यपुत्र ! एष्टव्ये काले भरतः आगतः ।

(ततः प्रविशति भरतः समातृकः)

भरतः—तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमैर्विमुक्त
मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम् ।
आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः
प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः ॥(६)

रामः—अम्बा ! अभिवादये ।

सर्वाः--जात ! चिरंजीव । दिष्ट्या वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य ।

रामः--अनुग्रहीतोऽस्मि ।

क्षमणलः--अम्बाः । अभिवादये।

सर्वाः--जात ! चिरजीव ।

लक्ष्मणः—अनुग्रहीतोऽस्मि ।

सीता--आर्याः ! वन्दे ।

सर्वाः—वत्से ! चिरमङ्गला भव ।

सीता—अनुग्रहीतास्मि ।

भरतः—आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमास्मि ।

रामः–एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
वक्षः प्रसारयं कवाटपुटप्रमाण
मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्प
प्रल्हादय व्यसनदग्धमिद शरीरम् ॥ (७)

भरतः—अनुग्रहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये । भरतोऽहमस्मि ।

सीता—आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव ।

भरतः—अनुग्रहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिष्वजस्व गाढम् । (आलिङ्गति)

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।
रामः – वत्स ! कथमिव ।
कैकयी—जात ! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः ।

शब्दार्थ—भ्रातृवत्सलः = भाई से स्नेह रखने वाला । श्वश्रूजनपुरोगं = सासुएँ जिसके आगे चल रही हैं, ऐसे भरत को । अवलोकयितुम्=देखने को । विशालीक्रियतां=दीर्घ बनाओ । एष्टव्ये = अभीष्ट, चाहे गए । समातृकः = माताओं के साथ । प्रवृद्धविपर्ययैः = अनेक प्रकार के । विषमैः = संकटों से । विमुक्तं = विरहित या छूटा हुआ । अमलं = स्वच्छ । शरदि = शरद् ऋतु में । सोमम् = चन्द्रमा को । आर्यासहाय = सीता के सहित । गुरुं = पूज्य को । दिदृक्षुः = देखने का इच्छुक । तुष्टहृदयः = प्रसन्न मन वाला । स्वजनानुबद्धः = अपने आदमियों द्वारा पीछे-पीछे आते हुए । अम्बाः = हे जननियो । वर्धामहे=आनन्द से परिपूर्ण हैं । अवसितप्रतिज्ञं = पूर्ण व्रत वाले । सह वध्वा= बहू सीता के साथ । चिरमङ्गला = बहुत समय तक कल्याण प्राप्त करने वाली । अनुगृहीत =कृपा से युक्त । आर्यपुत्रेण = राम के साथ । चिरसञ्चारी = बहुत समय तक साथ चलने वाले अर्थात् सुख भोगने वाले । प्रतिगृह्यतां = स्वीकार करो । चिराभिलषितः = बहुत समय से इच्छित ।

अन्वय—अयं भ्रातृवत्सलः त्वद्दर्शनसमुत्सुकः भरतः महता सैन्येन मातृभिः सह सम्प्राप्तः । (५)

अन्वय—अद्य तुष्टहृदयः अहम्-स्वजनानुबद्धः शरदि मेघैः विमुक्तम् अमलं सोमम् इव तैः तैः प्रवृद्धविपर्ययैः विषमैः विमुक्तम् आर्यासहायं गुरुं दिदृक्षुः प्राप्तः अस्मि । (६)

अन्वय—यह पद्य अंक ४, पद्य १६ में पहले आ चुका है । (७)

हिन्दी अर्थ

(प्रवेशक रूके)

लक्ष्मण—आर्य की जय हो । हे आर्य,

भाई से स्नेह रखने वाला, आपके दर्शन के लिए लालायित बना यह
भरत विशाल सेना को लेकर माताओं के साथ यहां आ गया है ।

राम—वत्स लक्ष्मण, क्या ऐसा ? भरत आ गया है ।
लक्ष्मण—आर्य, और क्या ।

राम—सीते, भरत के साथ तुम्हारी सासुएँ आ रही हैं । उनके दर्शन के लिए तुम्हारी आँखो को विशाल बना लो ।

सीता—आर्यपुत्र, चाहे गए समय पर भरत आ गए ।

(इसके बाद भरत का माताओ के सहित प्रवेश)

भरत—आज अतिप्रसन्न हृदय वाला मै अपने आत्मीय जनो के साथ, शरद् काल मे बादलो से रहित स्वच्छ चन्द्रमा के समान, नाना प्रकार के संकटो से मुक्त हुए, पूज्य सीता के सहित राम को देखने को इच्छुक यहा आया हूँ । (६)

राम—जननियो, मै प्रणाम करता हूं ।

सभी—पुत्र चिरजीव रहो । सौभाग्य से, अपने वचन निभाकर, सीता के साथ तुम्हे कुशलतापूर्वक देख कर हम बहुत सुखी हैं ।

राम—कृपा से युक्त हूँ ।

लक्ष्मण—जननियो को प्रणाम ।

सभी—पुत्र, चिरजीवी बनो ।

लक्ष्मण—कृपायुक्त हूँ ।

सीता—पूज्य जनो को प्रणाम ।

सभी—वत्से, सदा सुहागिन रहो ।

सीता—कृतकृत्य हो गई ।

भरत—आर्य, मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम—आओ, वत्स, इक्ष्वाकुकुमार, तुम्हारा कल्याण हो । दीर्घायु बनो । किवाडो के समान अपने विशालवक्ष स्थल को फलाओ और अपनी दोनों लम्बी भुजाओ से मेरा आलिगन करो । अपने शरद् कालीन चन्द्रमा के समान इस सुन्दर मुख को ऊपर उठाओ तथा मेरे इस दुःख से सन्तप्त शरीर को आनन्द प्रदान करो । (७)

भरत—अनुगृहीत हूँ । हे देवी, मैं भरत प्रणाम करता हूँ ।

सीता—आर्यपुत्र के साथ बहुत समय तक रहो ।

भरत—अनुगृहीत हूँ । आर्य, मैं प्रणाम करता हूँ ।

लक्ष्मण—वत्स, आओ, आओ, दीर्घायु बनो । मेरा प्रगाढ आलिगन करो

(आलिगन करता है)

भरत—कृतकृत्य हूँ। आर्य, राज्य के भार को स्वीकार करो।
राम—वत्स, क्यो ?
कैकेयी—पुत्र, हमारी यह इच्छा तो बहुत दिनो से है।
(४) मूल
(ततः प्रविशति शत्रुघ्नः)
शत्रुघ्नः—विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम्।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धी रावणान्तकरं गुरुम्॥ (८)
(उपगम्य) आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये।
राम.—एह्येहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव।
शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्ये ! अभिवादये।
सीता—वत्स ! चिरजीव।
शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य ! अभिवादये।
लक्ष्मणः—स्वस्ति, आयुष्मान् भव।
शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः।
तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात्।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम्॥ (९)
कैकेयी—गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम्।
रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा। (निष्क्रान्तः)
(नेपथ्ये)
जयतु भवान्। जयतु स्वामी। जयतु महाराजः।
जयतु देवः। जयतु भद्रमुखः। जयत्वार्यः।
जयतु रावणान्तकः।
कैकेयी—एते पुरोहिताः काञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्धयन्त आशिभिः पूजयन्ति।
सुमित्रा—प्रकृतयः परिचायिकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजय वर्धयन्ति।

(नेपथ्ये)

भो भो जनस्थानवासिनस्तयस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिम तमौघ
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैमयूखै ।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीया
रामो मही जयति सर्वजनाभिराम. ।। (१०)

कैकेयी—अम्महे ! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते ।

शब्दार्थ—व्यसनैः=सकटो से । क्लिष्टु=पोडित । अक्लिष्टगुणतेजसम्=बढ़े गुणो के प्रभाव वाले । द्रष्टु=देखने के लिए । त्वरते=शीघ्रता कर रही है । बुद्धिः=मन । रावणान्तकरं=रावण को मारने वाले । गुरुम्=श्रीराम को । एतौ=ये दोनों । सह प्रकृतिभिः=प्रजागण के साथ । पुरस्कृत्य=आगे करके । अभिलपतः=चाहते हैं । आहृतेन=लाए गए । नानानदीनदगतेन=बहुत सी नदियो और तालाबों में प्राप्त होने वाले । प्रासादात्=कृपा से । सलिलसिक्तम=जल से भीगे । इव=तुल्य । अरविन्दम्=कमल । अभिलष=प्राप्त करो । भद्रमुख=कल्याणकारी मुख वाले । रावणान्तक=रावण को मारने वाले । आशिभिः=शुभ वचनों से । पूजयन्ति=अभिनन्दन करते है । प्रकृतय=प्रजा । परिचारकाः=सेवक । वर्धयन्ति=बढा रहे हैं । रिपुप्रभवं=शत्रुजन्य । अप्रतिम=अनुपम । तमौघं=दुःखों के समूह को । शौर्यमयैः=पराक्रम रूपी । मयूखैः=किरणों से । अवाप्य=प्राप्त करके । सकलाशुभवर्जनीयां=सम्पूर्ण अमंगलो से रहित । मही=पृथ्वी को । जयति=वश मे करते है । सर्वजनाभिरामः=सकल लोक प्रिय । अम्महे=अहो ।

अन्वय—विविधैः व्यसनैः क्लिष्टम्, अक्लिष्टगुणतेजसम् रावणान्तकरम् गुरुम् द्रष्टुम् मे बुद्धिः त्वरते । (८)

अन्वय—तव प्रसादात् मुनिभिः स्वयम् आहृतेन नानानदीनदगतेन तीर्थोदकेन प्रथमाभिषिक्तम् ते मुखम् मुनिगणा. सलिलसिक्तम् अरविन्दम् इव द्रष्टुम् इच्छन्ति । (९)

अन्वय—अप्रतिमम् रिपुप्रभवम् तमौघम् सूर्य अन्धकारम् इव शौर्यमयैः मयूखैः हत्वा सकलाशुभवर्जनीयाम् सीताम् अवाप्य सर्वजनाभिरामः राम. महीम् जयति ।

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद शत्रुघ्न का प्रवेश)

शत्रुघ्न—अनेक प्रकार के दुःखो से घिर कर भी जिनका दिव्य तेज और गुण प्रदीप्त होता रहा और जिन्होंने अपने प्रबल शत्रु रावण का सरलता से विनाश किया, पूज्य राम को देखने के लिए मेरा मन शीघ्रता कर रहा है। (8)

(पास जाकर) आर्य, मैं शत्रुघ्न प्रणाम करता हूँ।

राम—वत्स, आओ, आओ। कल्याण हो, दीर्घायु बनो।

शत्रुघ्न—अनुगृहीत हूँ। आर्ये प्रणाम।

सीता—वत्स, बहुत समय तक जीवित रहो।

शत्रुघ्न—अनुगृहीत हूँ। आर्य, प्रणाम करता हूँ।

लक्ष्मण—कल्याण हो, दीर्घायु बनो।

शत्रुघ्न—अनुगृहीत हूँ। आर्य, ये दोनो वसिष्ठ और वामदेव प्रजागण के साथ अभिषेक को आगे लेकर आपसे मिलना चाहते हैं।

मुनिजन स्वयं जाकर बहुत सी छोटी-बडी नदियो से तीर्थ जल लाए है। उनकी इच्छा है कि आप सर्वप्रथम अभिषेक जल ग्रहण करे। इसके बाद अभिषेक जल से सिक्त कमल की तरह विकसित आपके मुख का वे दर्शन करना चाहते है। (९)

कैकेयी—जाओ पुत्र। राज्याभिषेक को स्वीकार करो।

राम—जैसी जननी की आज्ञा। (निकल जाते हैं)

(नेपथ्य मे)

आपकी जय। स्वामी की जय। महाराज की जय।

देव की जय। भद्रमुख की जय। आर्य की जय।

रावण के विनाशक की जय।

कैकेयी—ये पुरोहित और कंचुकी मेरे पुत्र का विजय नाद करते हुए आशीर्वचनो अभिनन्दन कर रहे है

सुमित्रा—प्रजा के लोग, सेवक और सज्जन गण मेरे पुत्र की विजय घोषणा कर रहे है।

(नेपथ्य मे)

हे जनस्थान मे रहने वाले तपस्वियो, आप लोग सुनिए, सुनिए।

जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रखर किरणो से अन्धकार का विनाश करता

है, उसी प्रकार अपने अनुपम पराक्रम से शत्रुओं द्वारा उत्पन्न संकटों के समूह को नष्ट कर, मंगलमयी सीता को पाकर नयनाभिराम राम ने पूरी पृथ्वी पर अधिकार लिया है। (१०)

कैकेयी—अहा, मेरे पुत्र की विजय घोषणा बढ रही है।

(५) मूल—

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः)

रामः—(विलोक्याकाशे) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत्।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणभ्युपेतम् ॥ (११)

भरतः—अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलि तीर्थतोयाभिषिक्तम्।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै
र्नवशशिनमिवार्यम् पश्यतो मे न तृप्तिः॥ (१२)

शत्रुघ्नः—एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम्।
पुनः प्रकाशता याति सोमस्येवोदये जगत्॥ (१३)

रामः—वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि।

लक्ष्मणः—दिष्ट्या भवान् वर्धते।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। एष खलु तत्रभवान् विभीषणो विज्ञापयति—सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्चानुगच्छन्तो विज्ञापयन्ति "दिष्ट्या भवान् वर्धते" इति।

रामः—"सहायानां प्रसादाद् वर्धत" इति कथ्यताम्।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः।

कैकेयी—धन्या खल्वस्मि। इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि।

रामः—द्रक्ष्यति भवती। (विलोक्य) अये ! प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति। (विभाव्य) आः ज्ञातम्। सम्प्राप्तं

पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम्। कृतसमयमिद स्मृतमात्र-
मुपगच्छतीति। तत् सर्वैरारुह्यताम्।
(सर्वे आरोहन्ति)

राम:—अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्या
सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमान:।

लक्ष्मण: – अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्ना
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम्॥ (१४)

(भरतवाक्यम्)

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागत:।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमि प्रशास्तुन:॥ (१५)

(निष्क्रान्ता: सर्वे)

इति सप्तमोऽङ्क:।

शब्दार्थ—कृताभिषेक = राज्याभिषेक किए हुए। तुष्टिं सन्तोष को। उपगच्छ = प्राप्त करो। विमुञ्च = परित्याग करो। दैन्म् = चिन्ता को। अभिलषितं=इच्छित। भुवि=पृथ्वी पर। सत्कृतभारवाही = सम्मानपूर्ण कार्य का वाहक। धर्मेण=धर्मपूर्वक। लोकपरिरक्षणं=प्रजा का संरक्षण। अभ्युपेतम्=स्वीकार कर लिया। अधिगतनृपशब्द = राजा शब्द को प्राप्त कर लिया। धार्यमाणातपत्र = राजच्छत्र को धारण कर लिया। विकसितकृतमौलिम् = मस्तक को उन्नमित किया। तीर्थतोयाभिषिक्त=तीर्थों के जल से स्नान करने वाले। गुरुम्=पूज्य राम को। अधिगतलीलम् = लक्ष्मी को प्राप्त करने वाले। वन्द्यमानम् = प्रणाम किए जाते हुए। जनौघै:-लोक समूह के द्वारा। नवशशिनम् इव=दूज के चाद की भांति। पश्यत: = देखते हुए। तृप्ति:=सन्तोष। नष्टकल्मषं = कलङ्कहीन। प्रकाशनाम् - दीप्तिशालिता को। याति = प्राप्त करता है। सोमस्य इव = चन्द्रमा के समान। उदये = उदय के समय। जगत् = संसार। अधिगतराज्य: = राज्य प्राप्त करने वाला। वर्धते = वृद्धि को प्राप्त कर रहे हैं। मैन्द = एक वानर का नाम। जाम्बवत्=एक भालू का नाम। हनूमत् = हनुमान। अनुगच्छन्त:=पीछे आते हुए।

सहायानां = सहायकों की । प्रसादात् = कृपा से । अभ्युदयं=राज्याभिषेक रूपी महोत्सव को । धन्या=पुण्यशालिनी । प्रेक्षितुं=देखने की । द्रक्ष्यति = देखोगी । भवती=देवी । प्रभाभिः=तेज के द्वारा । अखिल = समूचा । सूर्यवत्= सूर्य के समान । प्रतिभाति = प्रकाशित हो रहा है । विभाव्य=विचार कर के । सम्प्राप्तम् = आ पहुँचा है । पुष्पकं = विमान का नाम । कृतसमय = सकेत देने पर । स्मृतमात्रं = स्मरण काल मे । उपगच्छति=समीप जाता है । आरुह्यताम् = आरोहण किया जाए । यास्यामि=जाऊंगा । नागराः=नगर निवासी । त्वाम्=राम को । सनक्षत्रम्=अन्य तारा गणो के साथ । उदयस्थम् = उदयाचल पर विद्यमान । जानक्या = सीता के साथ । समायुक्तः= परिपूर्ण होकर । प्रशास्तु=पालन करें । नः = हमारे ।

अन्वय–स्वर्गे अपि तुष्टिम् उपगच्छ । दैन्यं विमुञ्च । त्वया मयि यत् कर्म अभिलषितम् तत् एतत् (निवृत्तम्) । किल भुवि सत्कृतभारवाही राजा अस्मि । धर्मेण लोकपरिरक्षणम् अभ्युपेतम् । (११)

अन्वय—अधिगतनृपशब्दम्, धार्यमाणातपत्रम्, विकसितकृतमौलिम्, तीर्थतोयाभिषिक्तम्, गुरुम् अधिगतलीलम् जनौघैः वन्द्यमानम् नवशशिनम् इव आर्यम् पश्यतः मे तृप्तिः न (जायते) । (१२)

अन्वय—आर्याभिषेकेण नष्टकल्मषम् मे एतत् कुलम् सोमस्य उदये जगत् इव पुनः प्रकाशतां याति । (१३)

अन्वय—अद्य एव अयोध्यां पुरीम् सम्बन्धिमित्रैः अनुगम्यमानः यास्यामि । च अद्य एव नागराः उदयस्थं सनक्षत्रं चन्द्रम् इव त्वाम् पश्यन्तु । (१४)

अन्वय—यथा रामः जानक्या बन्धुभिः च समागतः, तथा लक्ष्म्या समायुक्तः नः राजा भूमिम् प्रशास्तु । (१५)

हिन्दी अर्थ

(इसके बाद अभिषेक किए हुए राम का परिवार के साथ प्रवेश)

राम—(आकाश की ओर देखकर) हे पिताजी,

आप अब स्वर्ग मे आनन्द प्राप्त करें तथा सन्ताप को भूल जाएं ।

आपने मेरा राज्याभिषेक करना चाहा था, वह अब पूरा हुआ। अब मैं पृथ्वी पर पुण्य भार का वहन करने वाला राजा बन गया हूं। मैंने न्यायपूर्वक प्रजापालन का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया है। (११)

भरत— महाराज की पदवी प्राप्त करने वाले, राजच्छत्र ग्रहण करने वाले, प्रकाशमान मुकुट पहनने वाले, तीर्थों के जल से अभिषेक स्वीकार करने वाले, पूजनीय, राजलक्ष्मी को प्राप्त करने वाले, प्रजाओ के समूहों से जय-जयकार की ध्वनि वाले, नये चन्द्रमा की भाँति आर्य राम को देखते हुए मुझे तृप्ति नही हो रही है। (१२)

शत्रुघ्न—जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय से सारा ससार प्रकाशित होने लगता है, उसी प्रकार आर्य राम के राज्याभिषेक से निष्कलक मेरा यह रघुकुल फिर से प्रकाशमान हो रहा है। (१३)

राम—वत्स लक्ष्मण, अब मैंने राज्य पा लिया है।

लक्ष्मण—सौभाग्य की बात है कि आप वृद्धि को प्राप्त कर रहे हैं।

(प्रवेश करके)

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो। ये श्रीमान् विभीषण सूचित करते हैं कि सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान्, हनुमान् आदि आपके अनुचर निवेदन कर रहे है—"अहोभाग्य, आपको बधाई।"

राम—उनसे कह दो कि "आप सहायकों की कृपा से सब विजय है।"

काञ्चुकीय—जैसी महाराज की आज्ञा।

कैकेयी—मैं सौभाग्यशालिनी हूं। इस वैभव को मैं अयोध्या मे भी देखना चाहती हूँ।

राम—आप देखेंगी। (देखकर) अरे, यह समूचा तपोवन सूर्य के समान कान्ति से देदीप्यमान हो रहा है। (विचार कर के) अच्छा समझ गया। आकाश मे रावण का पुष्पक विमान आ गया है। यह ठीक समय पर याद करने मात्र से उपस्थित हो जाता है। तो आप सब इस पर चढिए।

(सब चढते हैं)